मेगस्थनीज व उसकी इण्डिका

मेगस्थनीज सेल्युकस निकेटर द्वारा भेजा गया (चन्द्रगुप्त मौर्य की राज सभा में) यूनानी राजदूत था। इसके पूर्व आर कोसिया के क्षलव दरबार में सेल्युकस का राजदूत रह चुका था। सम्भवतः वह ई0 पू0 304 से 299 ई0 पूर्व के बीच किसी समय पाटलिपु की सभा में उपस्थित हुआ था।

मेगस्थनीज भारत में दीर्घ समय तक रहकर जो कुछ देखा सुना उसे उसने **"इण्डिका"** नामक अपनी पुस्तिका में लिपिबद्ध किया। यद्यपि यह ग्रन्थ आज हमें अपने मूल रूप में प्राप्त नहीं होता है तथापि उसके कुछ अंश उद्धरण के रूप में बाद के अनेक यूनानी–रोमीय लेखकों जैसे– **एरियन, स्ट्रैओ, रिलनी** आदि की रचनाओं में मिलते हैं। **मेगस्थनीज की इण्डिका** से हमें तत्कालीन भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक आदि विभिन्न पक्षों की जानकारी मिलती है जिसका विवरण निम्न है।

भौगोलिक स्थिति :– मेगस्थनीज के कथनानुसार भारत वर्ष का आकार एक चतुर्भुज के समान है। इसके उत्तर में हिमोडस पहाड़ व पर्व में समुन्द्र तथा पश्चिम सिन्धू, गंगा, सोन, कोसी, गण्डक, राप्ती, गोमती आदि नदियाँ है। मेगस्थनीज ने अपनी इण्डिका में द0 भारत की किसी भी नदी का उल्लेख नहीं किया है। इसने अफगानिस्तान की नदियों काबुल, स्वात व गोमल आदि का भी उल्लेख किया है। उसका कारण यह था कि अफगानिस्तान भी चन्द्रगुप्त मौर्य के साम्राज्य में सम्मिलित था।

उसके अनुसार ग्रष्मि ऋतु में गर्मी बहुत पड़ती थी। वर्षा, गर्मी तथा जाड़े दोनो में होती थी, फिर भी वर्षा ग्रष्मि ऋतु में अधिक होती थी। भारत भूमि की उर्वरता का वर्णन करते हुए लिख है कि उस देश में अन्नों व फलों की दो फसलें प्रतिवर्ष होती है। युद्ध काल में सैनिक कभी भी फसलों का नुकसान नहीं करते थे। सिंचाई की ओर राज्य का विशेष ध्यान था। कुछ अधिकारियों का काम भूमि को नापना, उन छोटी–छोटी नालियों का निरिक्षण करना था जिनसे होकर जानी सिंचाई की नहरों में जाता था।

सामाजिक स्थिति :–

मेगस्थनीज के अनुसार भारतय समाज सात जातियों में विभक्त था। दार्शलिक, कृषक, शिकारी, पशुपालक, व्यापारी वशिल्पी, योद्धा, निरीक्षक तथा मन्त्री इसका कथन है कि इन जातियों के लोग अपने–अपने वयवसाय का ही अनुसरण करते थे। वे अनतरजातीय विवाह भी नहीं कर सकते थे।

विवाह का उद्देश्य भोग, सहकारिता प्राप्ति अथवा पुत्र प्राप्ति होता था। समाज में बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी। मुख्यतः आर्य विवाह पर्णाली का उल्लेख मेगस्थनीज करता है। जिसमें वर पक्ष कन्या पक्ष को उपहार देता है। सती प्रथा नहीं थी, शव के ऊपर छोटी–छोटी समादियां बनाई जाती थी।

ब्राह्मण तथा संयासी भोग बिलास से दूर रहकर सादा जीवन व्यतीत करते थे। ये मांस नहीं खाते थे। कुशासनों तथा मृगचर्म पर शयन करते थे। इनका कार्य घूम–घूमकर उपदेश देना तथा जन्म–मरण आदि मूढ़ प्रश्नों पर विचार–विमर्श करना था। शिक्षा का कार्य मुख्यतः इन्ही पर होता था। जब स्त्री गर्भवती होती थी तभी से ब्राह्मण समय–समय पर आकर उसके समक्ष मन्त्रोच्चर करते थे। इससे लगता है कि गर्भकाल से ही शिक्षा आरम्भ कर दी जाती थी।

मेगस्थनीज का कथन है कि भारतीय लेकन कला से अनभिज्ञ थे जो नितान्त असत्य है। इसने डिआनिसिडास और हेरेक्लीज देवताओं की पूजा का उल्लेख किया है वास्तव में यह क्रमशः शिव व कृष्ण की पूजा थी।

राजनैतिक दशाः–

मेगस्थनीज के अनुसार राजा राज्य का सर्वोच्च पदाधिकारी था। वह राज्य सभा में दिन भर रहता था व न्याय करता रहता था। जब राजा के शरीर को आबनूस के मुग्दरों से दबाया जाता था तो उस समय भी वह प्रजा के आवेदनों को सुनता था।

मेगस्थनीज पुनः लिखता है कि "राजा सदैव प्राणभय से आशंकित रहता था और इसी से वह कभी भी एक कमरे में दो रातें व्यतीत नहीं करता था।" पुनः आगे लिखते है कि भारतीयों का चरित्र उज्जवल था। यहां चोरी बहुत कम होती थी। दण्ड विधान बड़ा कठोर था। छोटे–छोटे अपराधों के लिये अंगविच्छेद का दण्ड दिया जाता था। यदि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के किसी अंग को हानी पहुँचाता था तो उसका भी अंग काट दिया जाता था।

मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र को 'पोलीबोथ्रा' के नाम से पुकारा है। उसका विस्तृत वर्णन किया है। वह लिखता है कि "यह गंगा तथा सोन नदियों के संगम पर है यह पूर्वी भारत का सबसे बड़ा नगर था। यह 80 स्टेदिया लम्बा तथा 15 स्टेडिया चौड़ा था। उसके चारों वरफ 600 फिट चौडी तथा 30 फिट गहरी खाई थी। नगर चारों तरफ ऊँची दिवार से घिरा था। जिसमें 64 तोरज द्वार लगे थे तथा 570 बुर्ज थे। नगर का शासन प्रबन्ध एक नगर परिषद द्वारा होता था जिसमें 5–5 सदस्यों बाकी 6 समितियाँ काम करती थी"

नगर के मध्य चन्द्रगुप्त मौरी का विशाल राजप्रसाद था। मेगस्थनीज के अनुसार भव्यता और शान ओ शोकत में सूसा तथा 'एकबटना' के राजमहल भी उसकी तुलना नहीं कर सकते थे।

समीक्षाः–

मेगस्थनीज के इस यात्रा विवरण में कहाँ तक वत्यता है इसका विद्वानों में काफी मतभेद है।

स्ट्रैबो :– मेगस्थनीज के इस विवरण को पूर्णता असत्य व अविशवस्नीय कहा है। यद्यपि वह एक विदेशी तथा भारतीय भाषा, रीतिरिवाजों एवं परम्पराओं को न समझ सकने के कारण उसने बहुत अनगिपत बातें लिख डाली है। जैसे–

1. भारत में चार जातियों के स्थान पर सात जातियों का उल्लेख किया है।
2. भारतीयों को लेखन कला तथा लिखित कानुन से अपपरिचित बताया है।
3. भारत वर्ष पर हेराक्लीज तथा डियानिडियस के आक्रमणें का उल्लेख किया है।
4. भारत वर्ष में अनेक मुखहीन, नासिका हीन, एकांक्षी तथा अतिदीर्घ कण जातियों का उल्लेख किया है। यदि इनका सुक्ष्मतम विवेचन किया जाए तो पता चलता है कि मेगस्थनीज की ये अशुद्धियाँ निम्न बातों पर आधारित थी–

1. यूनानी होने के करण वह कुछ विशिष्ट भारतीय प्रथाओं को समझ न सका।
2. उसने बहुत सी सूचानए जनश्रुति के आधार पर संग्रहित कील थी। इनमें से अधिकांश कपोल काल्पित अथक अतिरंजित थी।
3. मेगस्थनीज को द0 भारत का विशेष ज्ञान न था, अतः द0 भारत सम्बन्धी उसके अनेक उल्लेख कल्पना पर आधारित थे।
4. इसने यूनानी तथा भारतीय परम्पराओं का समिकर्ण कर दिया।

अतः इतना सब कुछ होने के बावजूद भी इसके विवरण को झूठ तथा कपोल काल्पित नहीं ठहराया जा सकता। उसके विवरण का ऐविहासिक मूल्य है। जिसकी उपेक्षा नही की जा सकती। जिन लेखकों ने उसके विवरण को झूठ बताया है इन्होनें भी उसके ग्रन्थ इण्डिका से बहुत कुछ सामाग्री ली है।

———————————————————

कौटिल्य एवं उसका अर्थ शास्त्र

कौटिल्य जिसे इतिहास में विष्णू गुप्त तथा चाणक्य आदि नामों से भी जाना जाता है। दुर्भाग्यवश उसके प्रारम्भिक जीवन के बारे में बड़ा विवाद है। यूनानी नेखों को छोड़कर प्रायः सभी ग्रन्थ उसके द्वारा नन्द वंश के विनाश का ही वर्णन करते हें। अतः उसके प्रारम्भिक जीवन के विषय में हमें ब्राह्माणोत्तर ग्रन्थों का सहारा लेना पड़ता है। पुराण, पुराण टीकाकार, मुहर, राक्षस, कथा सरित सागर आदि भी उसके द्वारा किये गये नंदवंश का विनाश एवं चन्द्रगुप्त के राज्याभिषेक का ही वर्णन करते हैं।

महावंश टीका के अनुसार– चाणक्य तक्षशिला निवासी एक ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुआ था। वह सभी वेदों का शाता, शास्त्र पारंगत, मंत्रविधा विशेष तथा पख्यात कूटनीतिश था। वह वक्षशिला के शिक्षा केन्द्र का मुख्या आचार्य तथा स्वभाव से अत्यन्त क्रोधी व रूढ़िवादी था।

एक दिन उसकी माँ रो रही थी कारण पूछने पर कौटिल्य की माता ने कहा " बेटा तुम्हारे भाग्य में क्षत्र धारण करल लिखा है अतः मुझे भय है कि कहीं राजकार्यों में पड़कर तुम मुझे भूल न जाओ इसी आशंका से में रो रहीं हूँ।

कौटिल्य ने पूछा– आखिर शरीर के किस भाग में क्षत्र धारण करने का निशान अंकित है। माँ ने उत्तर दिया 'दाँतों पर।' यह सुनकर चाणक्य ने अपने दाँत तोड़ डाले और माँ के पास रहकर उसकी सेवा करने लगा।

इसी ग्रन्थ का पुनः कथन है कि एक बार चाणक्य पुष्पपुर गया। जहाँ नन्दराज ने एक भुक्ति शाला बनवाया था। जिसमें ब्राहमणों को दान दिया जाता था। चाणक्य भुक्ति शाला के प्रमुख आसन पर जा बैठा। अतः नन्दराज ने क्रूद होकर उसे धमकी देकर बाहर निकाल दिया। चाणक्य अपमानित होकर वहाँ से चला गया व नन्दवंश के विनाश की प्रतिक्षा किया।

जैन ग्रन्थ परिशिष्ट पर्वन और आवश्यक सूत्र के अनुसार– "वह गोल विषय में चंणय" नाम ग्राम में उत्पन्न हुआ था। जैन ब्रहत्कथा कोष पाटलिपुत्र को उसका पुरातन पैतृक स्थान मानता है। इसी ग्रन्थ में उसके पिता का नाम कपित्न दिया हुआ है तथा उसकी पत्नि का नाम यशोमति था। एक बार यशोमति किसी समारोह में भाग लेने गयी थी जहाँ उसकी अन्य बहनों ने उसकी निर्धनता का उपहास उड़ाया था। अतः वह रोती हुयी घर आयी और सारा वृत्तांत चाणक्य को कह सुनाया। उसी दिन से चाणक्य ने धनार्जन करने का निश्चय किया। इस ग्रन्थ में नन्दराज द्वारा अपमानित करने का वृत्तांत दिया गया है।

अर्थशास्त्र– जैन ग्रन्थों तथा अन्य साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि चाणक्य, चन्द्रगुप्त मौर्य तथा विन्दुसार दोनों का प्रधानमंत्री था। बाद में उसने शासन कार्य त्याग कर सन्यास ग्रहण कर लिया। उसने अपने अन्तिम दिनों में वनों में तपस्या करते हुये राजशासन के ऊपर अर्थशास्त्र नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना किया। यह ग्रन्थ हिन्दु राजशासन के ऊपर प्राचीनतम उपलब्ध रचना है।

इस ग्रन्थ को 15 अधिकरणों तथा 180 प्रकरणों में बाँटा गया है। इसमें 6000 श्लोक वर्णित है। यह ग्रन्थ 1909 में शामशास्त्री द्वारा प्रकाश में लाया गया और उन्ही के द्वारा इसका अनुबाद किया गया।

1. प्रथम – अधिकरण में राजस्व सम्बन्धी विविध विषयों का वर्णन है।
2. द्वितीय – नागरिक प्रशासन की विशद विवेचना की गयी है।
3. तृतीय तथा चतुर्थ अधिकरण में दीवानी, फौजदारी तथा व्यक्तिगत कानून का उल्लेख मिलता है।
4. पाँचवे अधिकरण में – सम्राट के सभासदों एवं अनुचरों के कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का वर्णन है।
5. छठे अधिकरण में – राज्य के सप्तांगो, स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, बल, सेना, कोष तथा मिल के कार्यों का वर्णन है।
6. अन्तिम नौ अधिकरणों में – राजा की विदेश नीति, सैनिक अभियान, युद्ध में विजय के उपाय, शत्रुदेश में लोकप्रियता करने के उपाय, युद्ध तथा सन्धि के अवसर पर आदि विविध विषयों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

कौटिल्य के शासन का आदर्श बहुत ही उदात्त था। उसने अपने ग्रन्थ में जिस विस्तृत प्रशासनिक व्यवस्था का स्वरूप प्रस्तुत किया है उसमें प्रजा का हित ही राजा का परम लक्ष्य है। कौटिल्य मात्र राजनीतिक विचारद ही नहीं था अपितु वह राजनीति शास्त्र के क्षेत्र में एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादक भी था। राजनीति शास्त्र के क्षेत्र में अर्थशास्त्र का वहीं स्थान है जो व्याकरण के क्षेत्र में पाणिनी की अष्टाध्यायी का है।

दुर्भाग्य वश इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ के रचनाकाल तथा उसके स्वयिता के विषय में विद्धानों में बड़ा गहरा मतभेद है।

शामशास्त्री जैकोबी, बी0 ए0 स्मिथ, जायसवाल, फ्लिट आदि इस ग्रन्थ को कौटिल्य की कृति मानते हैं तथा इसके विपरीत जालों, कीथ, विन्तरनीत्ज तथा अ0 भण्डारकर आदि उसे कौटिल्य की रचना नहीं मानते तथा इसकी रचना प्रथम शताब्दी के आस पास बताते है। ये अपने नि0 तर्क प्रस्तुत करते है।

1. अर्थ शास्त्र में मौर्य साम्राज्य तथा उसके शासन का तन्त्र का कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

2. यह नगर प्रशासन तथा सैनिक प्रशासन की परिषदों का कोई उल्लेख नहीं करता तथा उसमें विदेशी नागरिकों के आचरण तथा उनकी देखरेख के लिये भी कोई नियम निर्धारित नहीं करा।
3. इस ग्रन्थ के अन्त में 'इति कौटिल्य' शब्द आया है इससे प्रकट होता है कि यदि कौटिल्य स्वंय इस ग्रन्थ का रचियता होता तो उसे इस प्रकार के शब्द लिखने की आवश्यकता नहीं थी। अतः इस ग्रन्थ में कौटिल्य के विचार अन्य पुरूष द्वारा प्रकट किया गया जान पढ़ता है।
4. कौटिल्य के नाम का उल्लेख मेगस्थनीज भी नहीं करता जो चन्द्रगुप्त के दरबार में काफी समय तक निवास किया था।
5. पतंजलि भी मौर्य शासन से परिचित थे वे भी कौटिल्य नामोल्लेख नहीं किये है।

इस प्रकार अर्थशास्त्र को चाणक्य की रचना नहीं माना जा सकता है।

यदि गहराई से उपर्युक्त तर्को की समीक्षा की जाये तो ऐसा प्रतीत होता है कि उनमें कोई ठोस बल नहीं हैं। अर्थ शास्त्र को जिन विद्धानों ने कौटिल्य की रचना स्वीकार किया है उनके द्वारा प्रतिपादित तर्क निम्न है–

1. अर्थशास्त्र एक असम्प्रदायिक रचना है जिसका मुख्य विषय सामान्य राज्य एवं उसके शासनतंत्र का विवरण प्रस्तुत करना है। इसमें चक्रवर्ती सम्राट का अधिकार क्षेत्र हिमालय से लेकर सम्रद्ध तट तक बताया गया है। जो इस बात का सूचक है कि कौटिल्य विस्तृत साम्राज्य से परिचित था।
2. अर्थशास्त्र मुख्यतः विभागीय अध्यक्षों का वर्णन करता है। नगर तथा सेना की परिषदों के स्वरूप का अशासकीय होने के कारण उल्लेख नहीं मिलता।
3. भारतीय लेखकों ने अपने नाम का उल्लेख अन्य पुरूष में करने की प्रथा रही।
4. मेगस्थनीज का सम्पूर्ण विवरण हमें प्राप्त नहीं होते हैं। हो सकता है कि कौटिल्य का विवरण उन अंशों में किया गया हो जिनका विवरण हमें प्राप्त नहीं है।

   पतंजलि ने अशोक तथा बिन्दुसार का भी उल्लेख नहीं किया है। तो क्या इन लोगों को अनैतिहासिक माना जा सकता है।
5. कौटिल्य जिस समाज का वर्णन करता है उसमें नियोग प्रथा, विधवा विवाह आदि का प्रचलन था। यह प्रथा मौर्य कालीन समाज में प्रचलित थी।
6. अर्थशास्त्र में बौद्धों के प्रति बहुत कम सम्मान प्रदर्शित किया गया है तथा लोगों अपने परिवार की पोषण की व्यवस्था किये बिना सन्यास ग्रहण करने से रोका गया है इससे स्पष्ट होता है कि यह ग्रन्थ बौद्ध धर्म के लोकप्रिय होने के पूर्व ही प्रचलित हो चुका था।

7. युक्त शब्द का प्रयोग अधिकारो के अर्थ में किया गया है। यही शब्द अशोक के लेखो में भी आया है।
8. कौटिल्य तथा मेगस्थनीज के विवरणों मे काफी समानताये पायी जाती है। मेगस्थनीज के समान कौटिल्य भी लिखता है कि जब चन्द्रगुप्त आखेट के लिये विकल्प था वो उसके साथ राजकीय जुलूस चलाता था। तथा सडको की कडी सुरक्षा रखी जाती थी। दोनो हमें बताते है कि सम्राट की अंगरक्षक महिलायें होती थी जिनसे सम्राट अपने शरीर की मालिश करवाता था। मेगस्थनीज के ओवरसिपर्स को अर्थशास्त्र में गुप्तचर कहा गया है। दानो का कार्य एक समान था।

   निष्कर्षतः दानें द्वारा प्रस्तुत प्रशासनिक व सामाजिक व्यवस्था का स्वरूप अधिकांश अंशों में समानता रखता है।
9. इस ग्रन्थ के अन्त में कहा गया है कि इस ग्रन्थ की रचना उस व्यक्ति ने किया है। जिसने कोष का वशीभूत होकर शस्त्र शास्त्र तथा नन्दराज के हाथों में गयी हुई पृथ्वी का शीघ्र उद्धार किया।

"येन शस्त्रमं च शास्त्रमें च नन्दराजमता च भूः।
अमषेजो दूतान्याशुं लेन शास्त्रमिदमं कृतम्।।"

अतः निर्विवाद रूप से यह स्वीकार किया जा सकता है कि यह ग्रन्थ चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधानमन्त्री कौटिल्य द्वारा चौथी शताब्दी ई0पू0 में रचा गया था।

———————————————————————

फाहियान का यात्रा विवरण

फाहियान एक चीनी यात्री था जिसने चन्द्रगुप्त के समय में 399 ऐ0 पी0 से 414 तक भारत के विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया था। यघपि फाहियान अपने यात्रा विवरण में कही भी चन्द्रगुप्त का नामोल्लेख नही किया है। तथापि उसके विवरण से हमें चन्द्रगुप्त कालीन संस्कृतिक दशा का सुन्दर वर्णन मिलता है।

चीन के यआंग नामक स्थान पर जन्में फाहियान का मन बचपन से ही महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं की ओर आकृष्ट हुआ था। बड़ा होने पर वह भिक्षू जीवन व्यतीत करने लगा। महात्मा बुद्ध की इन्ही शिक्षाओं उपदेशेा तथा बौद्ध ग्रन्थेा के गहन अध्ययन के लिये एवं बुद्ध के 1 चरण चिन्हो से पवित्र हुए स्थानों को देखने की लालसा में उसने भारत की यात्रा आरम्भ किया था।

सर्व प्रथम उसने अपनी यात्रा चंगन से प्रारम्भ किया। **शान–शान, करशहर, खोतान, काशगर, उघान, गांधार, पुरूषपुर,** भी यात्रा किया। जहॉ उसने कनिष्क द्वारा बनवाये गये टावर का दर्शन किया। इसके बाद नगारहार भी की राजधानी में बुद्ध का दन्तपगोडा देखा। सिन्धू पार कर पंजाब में असख्यों बौद्ध भिक्षुओं तथा बिहारेा को देखा। पंजाब के बाद उसने मध्यदेश में प्रवेश किया जिसका उसने व्यापक भ्रमण किया।

उसके विवरण से पता चलता है कि मघ्यदेश में ब्राहमणों का बोलबाला था। यहॉ लोग सुखी तथा समृद्धि थे। यहॉ के प्रशासन का वर्णन करते हुए फाहियान लिखता है कि लोगो को अपने मकानेा का पंजीकरण नही कराना पडता था। और न ही न्यायालय में दण्डान अधिकारियेा के सम्मुख उपस्थित होना पडता था। लोग चाहे जहॉ रह सकते थे। इन्हे उपज का एक भाग राजा को देना पडता था। दण्डविधान मृत्यु था। यहॉ के शासन में मृत्यु दण्ड तथा अंग विच्छेद जैसी क्रूर राजा का प्रचलन नहीं था। अपराधों पर केवल जुर्माना किया जाता था। बार बार राजद्रोह का अपराध करने पर दायॉ हाथ काट लिया जाता था। राजकर्मचारी वैवनिक होते थे। सम्पूर्ण देश में न तो किसी जीवित प्राणी की हत्या करते थे और नही मांस मंदिरा प्याज, लहसुन आदि का प्रयोग करते थे। केवल चाण्डाल इसके अपवाद थे। जो समाज से बहिष्कृत समझे जाते थे। तथा ये ही शिकार, मछलियां आदि का क्रय विक्रय करते थे। राजा तथा धनी जनता दोनो मन्दिरो एवं बिहारेा का निर्माण करवाते थे। तथा उसके प्रबन्ध के लिये ग्राम दान में देते थे। देश में परोपकारी संस्थाए बहुत थी। महात्मा बुद्ध के निर्माण के समय से लेकर आज तक राजा, सामन्त व गृहस्थ सभी भिक्षुओ के लिये बिहार बनवाते आये है। और उन बिहारेां के लिये खेत, मकान, बाग, नौकर, पशु आदि दान देते आये है।

भूमिदान ताम्रपत्रों द्वारा दिये जाते थे। देश में धनी व्यक्तियों ने औषधालय बनवाये जहां निर्धन, अनाथेा तथा विधवाओं की चिकित्सा की जाती थी।

फाहियान ने पवित्र बौद्ध स्थानेा की भी यात्रा किया था। संकिया तथा श्रावस्त्री में उसने अनेक स्मारक तथा भिक्षुओ के दर्शन किये थे। श्रावस्त्री स्थित जेतवन बिहार की वह काफी प्रशंसा किया है। तथा पाटलिपुत्र की यात्रा किया। पाटलिपुत्र में फाहिया ने अशेाक का राजमहल देखकर आश्चर्य चकित रहता था। उसने लिखा है कि इसका निर्माण देवो द्वारा किया गया है।

मगध देश का वर्णन करते हुए फाहियान लिखता है कि मध्य भारत के सभी देशो मे यही सबसे अधिक नगर थे। लोग सुखी तथा समृद्ध थे। तथा धनी व कर्तव्य पालन में परस्पर स्पर्धा रखते थे। इसके बाद फाहियान नालन्दा राजगृह तथा बौधिगया की यात्रा किया जहां अनेक पवित्र स्तूयेा तथा बिहारो के दर्शन किये। उसके आगे चलकर वह पुनः पाटलिपुत्र आया जहॉ से वाराणसी पहुचा। यहां उसने सारनाथ स्थिति मृगवन तथा दो बिहारो का दर्शन किया। पुनः वह पाटलिपुत्र आया जहॉ से चम्पा होता हुआ तामलुक पहुचा। यहां उसने दो वर्ष रहकर बौद्ध सूत्रो की प्रतिलिपियां तैयार की तथा बौद्ध प्रतिमाओं के चिन्ह बनाये। इसके पश्चात श्री लंका तथा पूर्वी द्वीपों से होता हुआ स्वदेश लौट गया।

समीक्षाः– फाहियान के यात्रा विवरण की सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि वह अपने सम्पूर्ण यात्रा वृत्तोट में तत्कालीन गुप्त राजा चन्द्र गुप्त का कही भी वर्णन नही करता। इसका कारण यह जान पडता है कि वह एक बौद्ध था और उसने प्रत्येक वस्तु को बौद्ध की ही दृष्टि से देखा। चन्द्रगुप्त का काल ब्राहण धर्म के चमेत्किर्ष का कल था। इसी कारण शायद उसने कही भी उसका उल्लेख नही किया है। फिर भी इसके विवरण से तत्कालीन शान्ति सुव्यवस्था समृद्धि एवं सहिष्णुता आदि की व्यस्त अलक मिलती है।

———————————————————————

अशोक की धार्मिक नीति की विवेचना कीजिए?

यधपि अशोक व्यक्तिगत रूप से निःसदेह बौद्ध था तथापि उसकी धार्मिक नीति– धर्म सहिष्णुता, शाल्ति, अहिंसा, समाजिक एकता, देश की अंखण्डता, दया, दान तथा उदारता आदि गुणों से ओत–प्रोत थी जैसा कि उसके अभिलेश इस बात के साक्षी हें कि उसकी धार्मिक नीति के पीछे कोई भी राजनैतिक उद्देश्य निहित नहीं था। जैसा कि रोमिला थापर का विचार है कि "उसकी धार्मिक नीति का एकमात्र उद्देश्य पूजा का कल्याण, मेल मिलाप, बंधुत्व तथा परस्पर सहयोग आदि को बढ़ावा देना था।"

यधपि यह सत्य है कि उसने इन आचारों और संस्थाओं का अन्त करना चाहा जिन्हें वह धर्माचरण के मौलिक सिद्धान्तों के प्रतिकूल समझता था। तथापि वह कभी भी देवों, ब्राह्मणों तथा अन्या सम्प्रदायों का विरोध नहीं किया था। जैसा कि प्रसिद्ध इतिहासकार हरिप्रसाद शास्त्री की मान्यता है कि "अशो की धार्मिक नीति ब्राह्मण विरोधी थी" अशोक के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि वह ब्राह्मणों प्रति अनुचित बर्ताव की निन्दा करता था तथा ब्राह्मणों, आणविकों को, जो गोशाल के अनुयायी थे, दान आदि देता था। उसने अपने धर्म महामंत्रों को निर्ग्रनथों तथा जैनियों के साथ–साथ अन्य सभी सम्प्रदायों की देखभाल की आशा दी थी।

अशोक अपने 12वें शिलालेख में विभिन्न धर्मो के प्रति अपने दृष्टि कोण स्पष्ट करते हुए कहता है कि "मनुष्य को अपने ही धर्म का आदर तथा दूसरे धर्म की निन्दा नहीं करनी चाहिये। बल्कि सभी धर्मो का आदर करना चाहिये। इससे मनुष्य अपने सम्प्रदाय की वृद्धि करता है तथा दूसरे सम्प्रदाय का उपकार। इसके विपरीत कार्य करता हुआ वह अपने सम्प्रदायों को क्षीण करता है तथा दूसरे सम्प्रदायों का उपकार करता है। जो कोई अपने सम्प्रदाय के प्रति भक्ति व उसकी उन्नति की लालसा से दूसरे धर्म की निन्दा करता है वह वस्तुतः अपने ही सम्प्रदाय की निन्दा व हानी करता है अतः लोग एक दूसरे के धर्म को सुने। इससे सभी सम्प्रदाया बहुभूत होंगे तथा संसार का कल्याण होगा।

इसी तरह सातवें शिलालेख में अशोक कहता है कि "सभी मतों के व्यक्ति एवं स्थानों पर रह सकते हें। क्यों कि वे सभी मतों के आत्म संयम एवं हृदय की पवित्रता चाहते हैं"

इन कथनों से ज्ञात होता है कि अशोक भली भाँति समझ चुका था कि सभी धर्मों में सच्चाई का अर्थ विद्यमान है और भी धर्म की निन्दा करना तथा किसी भी तरह से क्षति पहुँचाना श्रेष्ठकर नहीं है। इस प्रकार हमें इसकी धर्म निरपेक्षता तथा सहिष्णुता की नीति की झलक स्पष्ट रूप से मिलती है।

यद्यपि वह कुछ बुद्ध के उपदेशों की सत्यता को मानता था बौद्ध धर्म के तीन सिद्धान्तों में विश्वास करता था तथा बौद्ध संध के साथ निकट सम्पर्क तथा उसको अक्षुण्य बनाये रखना आवश्यक समझता था। तथापि उसने कभी भी अपने धार्मिक विचारों को दूसरों पर जबरदस्ती थोपने के चेष्टा नहीं किया।

अशोक के 8वें शिलालेख से ज्ञात होता है कि "वह धर्म यात्राओं के समप ब्राह्मणों व श्रमणों का दर्शन करता था और उन्हें दान देता था।"

जहाँ उसकी दानशीलता का प्रश्न है तो 12वाँ शिलालेख से पता चलता है कि "देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा सभी धर्मों, सम्प्रदायों साधुओं तथा गृहस्थों को दान आदि से सम्मानित करता था।"

अशोक ने गया जिले में बराबर की पहाड़ियों में आजीवक सम्प्रदाय के सन्यासियों के लिये निवास के लिये कुछ गुफाओं का निर्माण करवाया था। जिसमें सुदामा की गुफा तथा कर्ण चौपार नामक गुफा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसी प्रकार रावन जातीय तुषारूप को अशोक ने कठियावाड़ प्रान्त का राज्यपाल नियुक्त किया था। काश्मीर में उसने विजेश्वर नामक एक शिव मन्दिर का जीर्णोंदार करवाया था। इन उद्धरणों से अशोक की दानशीलता तथा धर्म सहिष्णुता स्वतः स्पष्ट हो जाती है।

अशोक की धार्मिक नीति भौतिक कल्याण के साथ साथ प्रजा के नैतिक उद्धार से भी ओत प्रोत थी। वह सदैव प्रजा के नैतिक, अहिक तथा पारलोकिक कल्याण के लिये चिंतित रहता था। "कलिंग युद्ध के बाद अशोक ने एक घोषणा की कि 'सारी प्रजा मेरी संतान है जिस प्रकार में अपनी संतान के लिये अहित तथा पारलोकिक कल्याण की कामना करता हूँ उसी प्रकार समस्त जनता के कल्याण की कामना करता हूँ जैसे माँ अपनी शिशु को एक कुशल धारा को सौपं कर निश्चिंन्त हो जाती है उसी प्रकार में भी अपनी प्रजा के सुख तथा कल्याण के लिये राज्य को नियुक्त कर निश्चिन्त हो गया हूँ"

इसी प्रकार उसकी उस घोष्णा से प्रजा का सत्य तथा प्रेम की भावना का स्पष्ट भाव होता है। इसी प्रकार वह अपने छठें शिलालेख में घोषणा करता है "कि हर क्षण व हर स्थान पर चाहे में रसोई घर में रहु या अनाःपुर मे मेरे प्रतिवेदक मुझसे प्रजा के कार्यो के विषय में सूचित करें। चूंकि में जनता का कार्य करने से कभी नहीं अधाता हूँ।" उसके 8वें शिलालेख से विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि वह अपने राज्य के विभिन्न भागों में निरिक्षण भी करता था। ताकि जनता के सुख–दुख का सीधा पता लगाया जा सकें।

उसकी दया व अहिंसावादी नीति का पता इस बात से भी लगता है कि उसने पशुओं की हत्या आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। विचार यात्राओं के स्थान पर धर्म

यात्राओं का प्रचलन किया। उसने न मात्र मनुष्यों के लिये ही बल्कि पशुओं के लिये भी औषधालय बनवाये। उसने दासो, नौकरों तथा वृद्धों के साथ उचित व्यवहार करने की घोषणा भी की थी जो उसकी उदारता का महान परिचायक है।

उसने सड़को के किनारे वृक्ष लगवायें। प्रति दो मील पर कूओं व तालाबों का निर्माण करवाया। औषधालय तथा सरायों का निर्माण करवाया। जो उसके सार्वजनिक निर्माण सम्बन्धी भावना के द्योतक है।

इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अशोक की धार्मिक नीति प्रजा की भलाई तथा उसके लौकिक व जालौकिक उद्धार, धर्म सहिष्णुता तथा दया–दान , अहिंसा आदि सभी गुणें से परिपूर्ण थी। उसकी नीति के पीछे केसी भी प्रगकार का व्यक्तिगत या राजनैतिक उद्देश्य निहित नही था।

रोमिला थापर का विचार है कि– "अशोक की धर्म नीति सफल नहीं हुई, क्यो कि वह अपने शासन के अन्तिम दिनों में धर्म को लेकर बहुत दुखी था। इस नीति की अवधारणा तत्कालीन समस्याओं का जो समाधान खोजने के लिये की गयी थी बुनियादी तौर पर यह असफल रही। सामाजिक तनाव ज्यों के त्यों बने रहे। साम्प्रादायिक संघर्ष जारी रहा।"

किन्तु इनका (रोमिला थापर का) मत अचित नहीं जान पड़ता क्यों कि अशोंक के काल में हमें किसी प्रकान का तनाव या साम्प्रदायिक संघर्ष का स्पष्ट उदाहरण नहीं मिलता। वस्तुतः यह उसकी उदार नीति का ही फल था कि वह अपने विशाल साम्राज्य में बगैर सैनय शक्ति का सहारा लिये एकता स्थापित करने में सफल रहा था।

नील कंठ शास्त्री का कथन काफी न्याय संगत लगता है कि अकबर के पूर्व अशोक पहला शासक था जिसने राष्ट्रीय एकता की समस्या का समाना किया था इसमें उसे अकबर से ज्यादा सफलता मिली थी क्योंकि उसको मानव प्रकृति का अच्छा ज्ञान था। डा0 उपाध्याय और चौधरी के विचारों को भी उद्धृत करना आवश्यक है। अशोक की धार्मिक नीति मुख्यतः धार्मिक सहिष्णुता, नैतिकता, अहिंसा, धार्मिक एकता, दया, दानशीलता, सामाजिक एकता, व अखण्डता, व उदारता आदि पर आधारित थी। प्रजावत्सलता,

नैतिकता– मानव सेवा, अतिथियों व आपरिचितों का सत्कार, बडो की सेवा आदि।

आध्यात्मिक उत्थान– अशोक ने उन दुगुणों का बताया है जो आध्यात्मिक उत्थान में बाधक होते है। इन्हे उसने आसिनव कहा है।

निष्कर्ष– अशोक सच्चे हदय से अपनी प्रजा का भौतिक तथा नैतिक कल्याण चाहता था। और इसी उददेश्य से उसने अपनी धार्मिक निति का विधान किया। उसके पीछे राजनैतिक चाल धोषणा तर्क संगत नही। जान पडता तथापि भौतिक व नैतिक उत्थान

के साथ साथ सामाजिक एकता स्थापित करने का उददेश्य भी जान पडता है शायद ऐसा इसलिये कि अशोक ने समझा होगा कि जबकि सामाजिक सद्भाव व मेल मिलाप नही होगा तब तक जनता अपना भौतिक व नैतिक कल्याण व उत्थान न कर पायेगी।

अशोक द्वारा बौद्ध धर्म ग्रहण करना – क्या अशोक बौद्ध था।

अशोक के बौद्ध धर्म ग्रहण करने के सम्बन्ध में साहित्य और अभिलेख दोनो मे पर्याप्त साक्ष्य मिलते है। समन्त प्रसादिका के अनुसार अपने पिता की भाति प्रारम्भ में अशोक भी बौद्धेत्तर सम्प्रदायों का आदर करता था। और विभिन्न सम्प्रदायों के सदस्यों व्यक्तियो राजकीय भोजनालय में भोजन करवाता था।

फादर हेरास के अनुसार अशोक प्रारम्भ में ब्रहण धर्मावल्वी था। इसी प्रकार प्रामस का विचार है कि अशोक जैन था परन्तु कालान्तर में वह जैन हो गया।

1. समान्तप्रसादिका के अनुसार अशोक अपने अभिषेक के चौथे वर्ष न्यग्रोथ द्धारा बौद्ध धर्मावली हो गया।
2. दीपवंश व महावंश में भी न्यग्रोच को ही अशोक के धर्म परिवर्तन का भरण माना जाता है। इसके अनुसार अशोक द्वारा अपने बडे भाई सुसीम की हत्या के बाद उसकी पत्नी जो उस समेय गर्भवती थी पटलिपुत्र छोडकर भाग गयी और एक चाण्डाल ग्राम मे जाकर बस गयी। यही पुनः न्यग्रोच का जन्म हुआ। जो सात वर्ष की आयु में भिक्षू बन गया। यही न्यग्रेच घूमते घूमते पावली पहुचकर अशोक को बौद्ध धर्म मे दीक्षित किया।
3. दिव्यावदान के अनुसार अशोक नरबन्ध के लिए एक विशेष प्रकार का बन्दीगृह बनवाया था यहां विभिन्न अपराधियो को और गिरोह व्यक्तियो को विभिन्न प्रकार की यातानाओ द्वारा मार डाला जाता था। एक बार बालपंडित नाम भिक्षु इसी बंदीगृह में जाया गया उसे जलवी हुई भटटी में झोक दिया गया। लेकिन वह जलने के बजाय अग्नि की ज्वालाओं के बीच एक कमल पर बैठा हुआ दिखाई दिया अशोक इससे बहुत ही प्रभावित हुआ। और तत्काल ही बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया।
4. हवेनसांग भी इस प्रकार के कथानक से मिलती जुलती कथा का वर्णन किया है। उसने वालपण्डित के स्थान पर उपरान्त में अशोक के धर्म परिवर्तन का हेतु माना है।

उपरोक्त विवरणेा से इतना तो निश्चित है कि अशोक किसी व्यक्ति विशेष के प्रभाव से ही बौद्ध धर्म स्वीाकार किया था। चाहे वह न्योग्रोथ था बालपडित या उपगुप्त लेकिन उसके हदय परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारण नरसंहार भी माना जाता है।

जब प्रश्न यह पडता है कि उसने बौद्ध धर्म कब स्वीकार किया। इस प्रकार पर्याप्त मतभेद दिखाई देता है। लेकिन प्राप्त साक्ष्यो का समचित सिहावलोकन करने के बाद निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि अशोक अपने अभिषेक के 9 वे वर्ष बौद्ध धर्म ग्रहण किया था। दीपवंश महावंश तथा समन्त प्रसादिका के अनुसार अशोक अपने अभिषेक के 4 वे वर्ष बौद्ध धर्म स्वीकार किया था।

लेकिन जैसा कि अशोक के 13 वे शिलालेख से ज्ञात होता है कि युद्ध उसके राज्यभिषेक के 8वें वर्ष हुआ था अतः अशोक इसके पूर्व बौद्ध नही था। पुनः 8वें शिलालेख से ज्ञात हेाता है कि अशोक अपने अभिषेक के 10वे वर्ष सम्बोधि की प्रथम यात्रा किया था। अतः निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि बौद्ध होन के पश्चात यह उसकी प्रथम यात्रा थी। इस प्रकार हम उसके धर्म ग्रहण करने की तिथि को दो सीमाओ के बीच युद्ध के बाद तथा सम्बोधि यात्रा के पहले रख सकते है। अर्थात राज्यभिषेक के 9वे वर्ष इसको पुष्टि हमें प्रथम शिलालेख से भी हो जाती है।

इतना तो अवश्य कब जा सकता है कि अशोक अपने राज्याभिषेक के 9वे वर्ष बौद्ध धर्म स्वीकार किया था लेकिन कुछ विद्धान उसे बौद्ध धर्मावलम्बी नही स्वीकार करते। अतः उस समस्त साक्ष्यों का उल्लेख अति आवश्यक है कि जिससे अशोक को निर्विवाद रूप से बौद्ध धर्मावलम्बी स्वीकार किया गया है। इन साक्ष्यों को हम साहित्यिक तथा अभिलेखीय दो भागो में बांट सकते है।

साहित्यिक साक्ष्यः–

(क) बौद्ध ग्रन्थ दीपवंश, महावंश समन्तप्रसादिका, दिव्यावदान, सुमंगलबिलसिनी आदि सभी एक स्वर से अशोक को बौद्ध धर्मावलम्बी मानते है।

(ख) मार्ग सहिता से भी उप्रत्यक्ष रूप से अशोक को बौद्ध माना जा सकता है।

(ग) राजतरंगिणी में आशोक द्वारा बुद्ध शासन अंगीकार करने की घटना का उल्लेख किया गया।

(ध) समस्त चीनी यात्री फाहियान हवेनसांग आदि ने अशोक को बौद्ध कहा है। इत्सिंग ने बौद्ध की वेष भूषा धारण किये हुए अशोक की एक मूर्ति को देखा था।

अभी के बीच साक्ष्यः–

1. प्रथम लघु शिलालेख– इसमें अशोक स्वयः कहता है कि " ढाई वर्ष हुए कि मैं उपासक हूँ परन्तु एक वर्ष तक मै संघ के साथ रहा हूँ तब से मैने सन्यास उघोग किया है इस प्रकार यह कथन उसके बौद्ध होने का द्योतक है।
2. 8 वें शिलालेख में उसके राज्या भिषेकु के 10वे वर्ष सम्बोधि की यात्रा का विवरण मिलताा है निःसंदेह यह बौद्ध होन के बाद अशोक की प्रथम यात्रा थी।

3. सम्मिनदेई स्तम्भकेब में अशोक द्वारा महात्मा बुद्ध की जन्म भूमि लम्बिनी की यात्रा का वर्णन है। जहॉ उसने तीर्थ यात्रा कर को समाप्त कर दिया था। और भूमि कर हटाकर 1/8 कर दिया था।
4. निग्लिवा अभिलेख में अशोक द्वारा बुद्ध कनकभुति के स्तूय से बर्द्धन तथा मूलान्तर पूजा का वर्णन है।
5. आसू अभिलेख में अशोक व केवल बौद्ध धर्म और संघ के प्रति अपनी श्रद्धा का प्रदर्शन करता है बल्कि भिक्ष भिक्षणी तथा उपासक अपब्धिकाओं के अध्ययन एवं मनन के लिये कलिपय बौद्ध ग्रन्थों का भी उल्लेख करता है।
6. सारनाथ, प्रयाग, और राची के स्तम्भलेख अर्थात को निविवाद रूप से अशोक को बौद्ध सिद्ध करते है। संरक्षक के रूप में आता है। सारनाथ स्तम्भ के अनुसार देवानां प्रिपदर्शी राजा इस प्रकार आदेश देते है कि संघ में कोई फूट न डाले उसे सफेद कपडा पहनाकर उस स्थान पर रख दिया जायेगा जो भिक्षा व भिक्षणियो के लिय उपयुक्त नही है।

उसके पांचवे स्तम्भकेत्व से विदित होता है कि वह अपने अभिषेक के 20 वे वर्ष जीवो की हत्या कर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया था।

इन साक्ष्यों के अलावा अनेकानेक साक्ष्य भी मिलते है जिनसे अशोक का बौद्ध होना ज्ञात होता है। अशोक के अपने अभिषेक के 18 वें वर्ष पाटलिपुत्र में मोगलिपुत्र की अध्यक्षता में तृतीय बौद्ध संगीत का आयेाजन किया था। और इसी संगीत का समाप्ति पर विदेशों मे धम्म प्रचार के लिये बौद्ध भिक्षुओ को भेजने का निर्णय किया गया था।

बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार बौद्ध धर्म ग्रहण करने के बाद अशोक पाटलिपुत्र के बौद्ध बिहार कुकुटाराम गया तत्पश्चात उसने तथागत के अवशेषो के संग्रहीत कर 84000 स्तूपों का निर्माण करवाया।

इस प्रकार निःसंदेह रूप से अशोक का बौद्ध धर्मावलम्बी एवं उसका संरक्षक स्वीकार किया जा सकता है। इसमें अविश्वास करना अतर्क संग्रह तथ्य मूर्खता होगी।

"उत्तराधिकार युद्ध"

आज भी यह प्रश्न विवादास्वद बना हुआ है कि बिन्दुसार की मृत्यु के बाद अशोक निर्विवाद रूप से सिंहासनारूढ हुआ था उसे उत्तराधिकार के किये युद्ध करना पडा था। बौद्ध ग्रन्थ एक स्वर से उत्तराधिकार के युद्ध का समर्थन करते है।

1. महावंश व दीपवंश के अनुसार अशोक अपने 99 भाइयों की हत्या कर सिहासना रूढ हुआ था।
2. दब्याब दान के अनुसार बिन्दुसार अपने बडे पुत्र. सुसीम को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था किन्तु वह बडी चिन्ता में था क्योकि सभी राजकुमार राजा बनाना चाहते थें अतः उसने एक परिब्राजक की सलाह मानकर

सभा राजकुमारो की परीक्षा लेने को कहा जिसमे अशोक सबसे योग्य साबित हुआ। इसके अलावा प्ररिब्रजक भी पहले से अशोक का ही पक्षधर था। इधर मन्त्री बल्लाटक सुसीम से पहले से ही असंतुष्ट था इसने तक्ष शिला मे विद्रोह कर दिया बिन्दुसार ने शान्त करने के लिये सुसीम को भेजा इधर बिन्दुसार की हालत उत्तरोत्तर बिगडती वाणी अन्ततः वह मृत्यु को प्राप्त हुआ। अमात्यों ने अशोक को अवसर पाकर राजा बना दिया। अमात्यों ने अशोक को अवसर पाकर राजा बना दिया। सुसीम समाचार पाकर वापस आया लेकिन षडयन्त्र द्वारा मार डाला गया।

3. महाबोधिवंश मे भी उत्तराधिकार युद्ध का वर्णन है इससे ज्ञात होता है कि अन्य भाइयों ने सुसीम का पक्ष किया था।
4. तारानाथ भी युद्ध को स्वीकार करता है उसके अनुसार अशोक अपने 6 भाइयों को मारकर सिहासनकारूद्ध हुआ था।
5. चीनी फा–युएनचूलिन के वर्णन से भी ज्ञात होता है कि आशोक ने आपने बडे भाई को मारकर राज्य ग्रहण किया था।

उपर्युक्त समस्त साक्ष्यो से स्पस्ट ज्ञात होता है कि उत्तराधिकारी युद्ध अवश्य हुआ था। केकिन इसके लिये अशोक को अपने सभी भाइयो की हत्या करनी पडी थी या मात्र सुसीम की ही। जहां तक 99 भाइयों की सामुहिक छाया कि बात है वह अतिरंजित मालूम पडती है हा इसमें कोई संदेह नही कि अशोक को इस युद्ध में दो चार भाइयो की हत्या करनी पडी हो। जैसा कि तारानाथ 6 भाइयों की 5वें शिलालेख मे भी मिलती है जिसमें उसके राज्यभिषेक के 13वें वर्ष उसके उनको भाई बहनो के जिवित रहने का उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि बिन्दुसार की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार युद्ध अवश्य हुआ उसमें अशोक खल्लाटक राधागुप्त एवं अमात्य वर्ग की सहायता से विजयी हुआ। सुसीम एवं उसके कुछ पक्षपाती भाई मारे गये।

पुनः दीपवंश व महावंश का कथन है कि अशोक का राज्याभिषेक उसके सिहासन ग्रहण करने के 4वे वर्ष बाद हुआ उससे पता चलता है कि यह बिलम्ब शायद युद्ध के कारण ही हुआ हो।

पुराणों मे मौर्य काल कही 136 वर्ष माल जाता है तो कही 132 वर्ष यह चार वर्ष का अन्तर भी युद्ध का समर्थन करता है।

इसके विपरीत डा0 डी0आर0 भण्डारकर व स्मिथ यह स्वीकार करते है कि उत्तराधिकार के लिये कोई युद्ध नही हुआ था या अशोक अपने भाइयो की हत्या नही किया था के अपने मत की पुष्टि में नि0 तर्क देते है।

1. अशोक के पांचवे शिलालेख मे उसके कुछ जीवित भाइयो का उल्लेख है जिसके साथ उसका अत्यन्त उदारक एवे सौहार्द पूर्ण व्यवहार था। फिर कैसे यह मात्र जाय कि युद्ध मे वह उपने भाइयो का बधकर सकता था।

2. दूसरे अशोक के अभिकेश मे भी इस युद्ध को वर्णन नही मिलता।

लेकिन यह मत नितान्त कोरा है क्योकि अशोक के अभिलेखो का दृष्टिकोण नितांत सोमित है उसमें अशोक की जीवनी तक नही मिलती। अतः युद्ध का जब अशोक ये लेख उत्तीर्ण करवाये तब वह पूर्ण रूपेण बौद्ध हो चुका था। और इस नृशंसता का उल्लेख आवश्यक न समझा हो।

इनका तीसरा मत है कि अशोक अपने अभिलेखो से अत्यन्त उदार एवं सहदय व्यक्ति दृष्टिगत होता है। फिर भी भला वह अपने भाइयो की हत्या कैसे कर सकता है।

लेकिन यह तर्क भी निर्बल है क्योकि उसकी यह उदारता धर्म परिवर्तन के बाद हुई थी। इसके पहले उसे बौद्ध ग्रन्थ चण्डाशोक के नाम से पुकारते है अतः युद्ध अवश्य हुआ था।

अशेाक के धर्म की व्याख्या कीजिए उसके स्वरूप उत्तरदायी कारणेा की भी व्याख्या कीजिये क्या उसकी यह धर्म नीति सफल हुई धर्म का परवर्ती भारतीय इतिहास पर क्या प्रभाव पडा विविचना कीजिए। अशोक को जिन कारणो से महान कहा जाता है उसमें उसके धर्म की सीमा कहां तक उत्तरदायी है।

'धम्म' संस्कृत शब्द धर्म का प्राकृत रूप है यह नैतिक और सामाजिक नियमो की व्यवहारिक रूप है यह नैतिक और सामाजिक नियमो की व्यावहारिक संहिता है जो सभी धर्मो में समान रूप से जानी जा सकती है। डा0 रोमिला थापर के शब्दो में– "धर्म का अर्थ सार्वदेशिक विधान अथवा न्यायप्रियता है। और कुछ विस्तार दे तो सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था है जा बिन्दू समाज में दिखाई पडती है।"

अशोक ने जिस धर्म का प्रचार किया वह उसके व्यक्तिगत बौद्ध धर्म से भिन्न था जैसा कि सर्वसम्मत से सिद्ध हो चुका है कि वह व्यक्ति गत रूप से बौद्ध था। और वही उसका धर्म कहा जाने का अधिकारी है जिससे अशोक को विश्व इतिहास मे महान के नाम से जाना जाता है इसका आविर्भाव अशोक ने स्वयं प्रजा के कल्यार्ण नैतिक तथा सामाजिक उदधार तथा समस्त प्रजा को राजनैतिक सूत्र में आवध करने के लिये किया था। इस धर्म मे मुख्यतः सहिष्णुता अहिसा सामाजिक कल्याण परोपकार आदि पक्षो पर अत्यधिक जोर दिया गया है।

नीलकण्ठ शास्त्री के अनुसार अशोक का धर्म सामाजिक और नीति शास्त्र की एक व्यावहारिकता संहिता है। जिसका धर्म तथा दर्शन से कोई मतलब नही है उसके इस दय धर्म के क्षेत्र मे मानव के अतिरिक्त पशु भी सम्मिलित है।

इस प्रकार अशोक अपनी प्रजा से जिस धर्म का अनुसरण कराना चाहा तथा जिसका प्रचार किया वह उसके व्यक्तिगत बौद्ध धर्म से पृथक था।

रोमिला थावर ने लिखा है कि कुछ राजनैतिक उददेश्यो से प्रेरित होकर अशोक ने अपने इस धर्म के विस्तार को जन्म दिया था। और उसके माध्यम से उसने तत्कालिन समस्याओ का समाधान योजना चाहा था। अब प्रश्न उठता है कि वे तत्कालिन समस्याओ क्या थी। जिसने अशोक के मन मे इस तरह के विचार को जन्म दिया इसके उत्तर मे उनका रोमिला थावर कथन है कि इस समय नवीन धार्मिक आन्दोलनो के उदय के प्रभाव स्वरूप सम्पूर्ण समाज दो वगों मे बाट गया था और इस सम्पदायोके संधात से और बहुमत विरोधियो के कारण सामाजिक डाचे मे तनाव और अन्तविरोध पैदा हो गया था। इसके अतिरिक्त और भी तनाव थे जो वणित समुदाय की मर्यादा नगरो मे शिल्पियो की शक्ति अत्यधिक केन्द्रीय कृत शासन प्रणाली तथा साम्राज्य के विस्तृत होने से सम्राज्य के विभिन्न वर्गो के मध्य जातियो वर्गो संस्कृतियो आदि का काफी मतभेंद था दुसरे चन्दगुप्त जहॉ समस्त साम्राज्य का प्रशासन सैनिक शक्ति सभी वर्गो से संकलित सारग्राही धर्म को अपना कर करना चाहता था।

इस परिस्थित मे एक समान धार्मिक विचार धारा की आवश्यकता थी जो समस्त साम्राज्य को राजनैतिक एकता के सूत्र मे आवद्ध कर सकती थी। यहा भावना अशोक के धर्म की उत्पत्ति का मूल कारण कही जा सकती है।

रोमिला थापर की मान्यता है कि अशोक को इस कार्य में इससे पर्याप्त सहायता मिली क्योकि ये नवीन विचार उग्ररूप से पुराने विचारो के विरूध न थे। जिनके कारण दोनो में समझौता सम्भव था आगे इनका रोमिला थापर विचार है कि इस नवीन धर्म को अपनाना और उसका सक्रिया प्रचार करना राज्य की छोटी इकाइयो को सम्मिलित करके साम्राज्य को एक सूत्र मे बांधने वाली शक्ति का कार्य कर सकता था।

अब अशोक के इस धम्म की बुनियादी सिद्धान्तो ककी विवेचना करनी चाहिये जिन पर उसने अत्यधिक जोर दिया। और अपने समस्त साम्राज्य की शक्ति उसके प्रचारार्थ समर्पित कर दिया। और जो सिद्धान्त कालान्तर में उसकी महानता के कारण भी बने।

अशोक के धम्म को दो पक्ष है विधायक पक्ष एवं निषेधात्मक पक्ष

विधायक पक्ष – अपने दूसरे शिलालेख मे अशोक स्वयं प्रश्न करता है कि धम्म क्या है इसका उत्तर वह स्वतः अपने दूसरे व सातवे शिलालेख में देता है।

उपासिनवे बहुकयाने दया दाने सचे सोचये सादयं साधयं च आर्थात अल्प रूप अत्यधिक कल्याण, दया दान सत्यवादिया पवित्रता मुद्रता साधुता ही धर्म है। इन गुणो को व्यवहार मे लाने के लिये उसने नि0 बातो को अपने धर्म मे आवश्यक बतायी है।

प्राणियो की हत्या न करना न क्षति पहुॅचाना माता पिता की सेवा करना बृद्धो की सेवा करना गुरूजनो का सम्मान करना मित्रो परिचितो ब्राहणेा तथा श्रमण मे साथ अच्छा व्यवहार करना कम खर्च तथा संचय करना

निषेधात्मक पक्ष– इसमें अशोक उन दुगुणो को बताया है जो आत्यात्मिक उन्नति मे बाधक होते है। उन्हे आसिनव शब्द मे व्यक्त किया है। आसिनव को अशोन ने पापे कहा है ये दुगुर्ण नि0 है।

प्रचंडता निष्ठुरता क्रोध धमण्ड ईष्या इन दुगुर्णो से बचने के लिये अशोक आत्म परीक्षण पर बल दिया है। अतः मनुष्य का अपने सभी कर्मो का निरीक्षण करना चाहिये। 7वे शिलालेख में अशोक कहता है कि लोग बहुत से मंगल करते है रोग सन्तानोत्पत्ति विवाह परदेश गमन आदि अवसरो का स्त्रिय अनेकानेक मांगलिक कार्य किया करती है। उसके अनुसार ये बहुत कम फल दायक है इनके स्थान पर धर्म मंगल करना चाहिये।

11वे शिलालेख मे धर्म दान को साधारण दान से श्रेष्ठ बताया है धर्म दान का अर्थ धर्म का उपदेश देना, धर्म मे भाग लेना तथा धर्म से अपने का सम्बन्धित करना।

13वे शिलालेख में धर्म विजय को साधारण विजय से बेहतर माना है अशोक ने अपने धर्म में सहिष्णुता तथा अहिसा पर अत्यधिक बल दिया है।

12 वे शिलालेख में अशोक ने धर्म की सारबुद्धी पर जोर दिया है। उसने इसमे बडै ही रोमाचक ढग से अपने आदेश को बुदवाया है। एक सम्प्रदाय प्राप्त करे। सभी व्यक्ति सभी स्थानो पर रहे। किसी के धर्म की निन्दा न करे। एक दूसरे से प्रेम पूर्वक व्यवहार और आपने सभी व्यक्तिगत सामाजिक राष्टीय तथा अन्तर्राष्टीय जीवन में अहिसा का पालन करें।

इससे ज्ञात होता है कि अशोक का धाम एक व्यवहारिक आचरण का धर्म था। जिसके सिद्धान्त सभी धर्मो में पाये जाते है। रोमिल थापर के अनुसार अशोक के लिये व्यवहारिक जीवन का एक ऐसा मार्ग था जो एक श्रेष्ठतम सामाजिक नैतिकता और नागरिक उत्तरदायित्व की भावना पर निर्भर था।

अहिंसा पर जोर देते हुए अपने प्रथम शिलालेख मे अशोक ने कहा है कि जहा मेरी पाठशाला मे हजारो पशु मारे जाते थे। अब मात्र तीन ही पशु भी नही मारे जायेगे। अनालम्भेा प्राणिनां अविहिंसा भूतानां 8वे शिलालेख से ज्ञात है कि समाज तथा बिहार याात्राओ पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। जिनमें प्राप्त हिसात्मक मनोरंजन होते है। इसके स्थान पर उसने धर्म यात्राओ पर जोर दिया। जनकल्याणकारी कार्यो तथा परोपकार को भी उसने अपने धर्म में स्थान दिया था।

अपने 13वे शिलालेख में वह सर्व भूताना अक्षति च संयम च का प्रचार किया है इस ध्यये की पूर्मि के किये उसने अनकानेक जीवोपकार किये।

सातवे शिलालेख मे अशोक कहता है कि मैने मार्गो मे वटवृक्ष लगवाये आम्रकुज लगवाये प्रति दो मील पर कुए खुदवाये आम्रकुज लगवाये प्रति दो मील पर कुए खुदवाये अनेक शालाये जलाश्यो तथा चिकित्सालयो का निर्माण करवाया। क्यो मनुष्यो तथा पशुओ सब के लिये।

इसी प्रकार दूसरे शिलालेख मे अशोक कहता है कि मैने द्विपद मनुष्य तथा चतुथपद जानवर पक्षियो और जल चरों के लिये अनेक प्रकार से उदारता तथा अनुग्रह किये है।

इस प्रकार विदित होता हे कि उसके धर्म मे मानव जगत के साथ साथ पशु जगत सम्लित था। अशोक की उदारता और महानता का ज्वलन्त प्रमाण है। अतः अशोक का धर्म नैतिकता सदाचार धर्म सहिष्णुता अहिसा परोपकारिता एवं जन कल्याण कारी भवनाओ से ओत पेात था।

'धम्म' का स्वरूप

धर्म की उदारता सफलता तथा सहिष्णुता ने इसके स्वरूप को एक पहेली बना दिया स्पष्टता इसमे किसी भी दार्शनिक अथवा तत्व मीमाशीय प्रश्न की समीक्षा नही हुई है। फिर भी विद्वानो ने इसके स्वरूप की भिन्न व्याख्या की है।

फलीट इसे राजधर्म मानते है। इनके अनुसार अशोक ने इसका निर्माण अपने राज्यकर्मचारियो के पालनार्थ किया था। लेकिन इनका मत अग्राध्य है। क्योकि अशोक का धर्म मात्र कर्म चारियो तक ही सिमित नही था वस्तु सर्वसाधारण के लिये भी था।

राधाकुमुद मुखर्जी ने इसे सभी धर्मों की साक्षी सम्पत्ति बताया है। अथति यह सभी धर्मो का सार था। सेनार्ट का विचार है कि अशोक ने अपने अभिलेखेा में जिस धर्म का उल्लेख किया है वह उसके समय के बौद्ध धर्म का एक पूर्ण तथा सर्वा चित प्रस्तुत करता है यह मत काफी अतर्क संगत है।

रोमिल थापर का मत है कि धम्म अशोक का निजी आविष्कार था। स्मिथ के अनुसार अशोक का धर्म किसी एक सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्धीत न था। अपितु वह सभी भारतीय धर्मो के लिये समान था।

डा0 भण्डारकर अशोक के धर्म को उपासक बौध माना है इनका मत है कि नतो अशोक का धर्म सभी धर्मो का सार ही है और न ही उसमे बौद्ध धर्म का पूर्ण एवं सर्वागिण चितरण है।

अर्थात अशोक का धर्म धर्म निरपेक्ष बौद्ध के अतिरिक्त कुछ नही है।

अपने मत के समर्थन मे वे ये तर्क देते है कि अशोक के समर्प बौद्ध धर्म का दो रूप था। 1. भिक्ष बौध धर्म 2. उपासक बौद धर्म इसमे उपासक बौद्ध धर्म समान गृहस्थो के लिये थे। अशोक गृहस्थ होने के कारण उपासक बौद्ध धर्म और उपासक बौध धर्म की तुलना की जाये तो वे एक दूसरे से एकदम मिलते जुलते है। जो दीर्घनिकाय के सिगालोवादसुत्त में देखे जा सकते है। विमानवत्भु से भी इसका समर्थन होता है। यह मत काफी हद तक संताषप्रद एवं तक संग्रह प्रतीत होता है।

डा0 रोमिल थापर का विचार है कि जो भी हो धर्म की नीति सफल नही हुई। हो सकता है कि इसका कारण धर्म स्वीकृत कराने मे अशोक की अत्यधिक व्यग्रता अथवा उसकी अपनी दुर्बलता रही हो। क्योंकि अपने शासन काल के अन्तिक दिनो मे वह धर्म को लेकर अत्यधिक अदिग्न रहने लगा था।

इस नीति की अवधारणा तत्कालीन समस्याओ का जो समाधान खोजने के लिये की गयी थी बुनियादी तौर पर वही समाधान देने मे यह असफल रही। सामाजिक तभव ज्यों के त्यो बने रहे समाप्ताहिक सघर्ष बराबर चलते रहें। एक दृष्टि से धर्म बडा अनिश्चित समाधान था। क्योकि समस्याए व्यवहार की जडो मे भी।

रोमिला थापर के इस मत को पूर्णत स्वीाकर करने में अनेकानेक आपत्तियो है सम्पूर्ण शासन काल मे विद्रोह साम्प्रदायिक दंगा साच्य मिलता है कि साम्राज्य कोई भाग शासन काल मे अद्विग्न रहना एक मात्र धर्म के कारण नही माना जा सकता। इसके अनेक कारण हो सकते थे।

इस प्रकार इतना तो निश्चयपुर्वक कहा जा सकता है कि अशोक का धर्म चिरस्थाई बले ही न रहा हो लेकिन उसके सम्पूर्ण शासन मे यह अत्यन्त लोकप्रिय और सफल रहा व अशोक के शासन का आधार स्तम्भ बना रहा।

सर्वलोकहित मेरा कर्तव्य है सर्वलोकहित से बढकर कोई दूसरा कर्म नही है मै जो कुछ पराक्रम करता हू वह इसलिये कि भूतो के वतज से मुक्त हो जाऊ।

अशोक इतिहास मे शान्ति एवं विश्व बन्धुत्व के अन्वेषाके मे सर्व प्रमुख है इस दृष्टि से वह न केवल अपने समय अपितु आधुनिक समय से भी बहुत आगे था। जो समय भी उस आदर्श को कार्याम्बित करने के लिये संघर्ष कर रहा था।

"इतिहास के स्तम्भो को भरने वाले राजाओ सम्रातो धर्माधिकारियेां संत महात्माओ आदि के बीच अशोक का नाम प्रकाशमान है और आकाश मे प्रायः एकांकी भी इसके नाम का सम्मान किया जाता है चीन तिब्बत और भारत भी यघपि उसने उसके सिद्धान्तो को त्याग दिया है उसकी महानता की परम्परा को बनाये हुए है। जितने लोगो ने कास्टेन्टाइन या शार्लमेन का नाम सुना है उससे भी अधिक लोग आज आदर पूर्वक उसका स्मरण करते है।"

————————————————————

शक शासन सददामन की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए

परिचय – भारतीय साहित्य मे यत्र तत्र शको उल्लेख मिलता है पुराण रामायण महाभारत आदि ग्रन्थो मे यवन तुरूठक हूण आदि जातियो के साथ शको का भी उल्लेख मिलता है। भारतीय साहित्य मे शको के प्रदेश को शमद्धीप अथवा शकस्थान कहा गया है।

शक मूलतः सीरदरिया के उत्तर मे निवास करने वाली एक खानाबदोश तथा बर्बर जाति थी चीनी ग्रन्थ वाजकूकूत हाउहान से ज्ञात होता हे कि 165 के लगभग यू0पी0 नामक एक अन्य जाति से विवश होंना पडा। और सीर दरीया को पारकर बेलव पर अधिकार कर लिया। लेकिन सीघ्र ही उन्हे सूची दो शाखाओ मे बट गये। एक शाखा ने कि पिन कपिसा पर अधिकार कर लिया और दूसरी शाखा इरान की और आयी लेकिन इरानी शाखा पुनः पशियन नरेश मिक्षदान से पराजित होकर हेलमण्ड धाती शक स्तान या सस्तिान कहा गया है। यहा से शको ने कान्धार और बोलन दरी होते हूए सिन्धु नदी घाटी मे जा पहुचे उन्होने सिन्धु प्रदेश मे अपना निवास स्थान बना लिया। शको के साथ सम्पर्क के कारण इस स्थान को शंकद्धीप कहा गया।

शको ने पश्चिमोत्तर भारत से यवन सत्ता का समाप्त कर उत्तरापथ एवं पश्चिमी भारत के एक बडे भाग को अधिकृत कर लिया। तत्पश्चात मथुरा महाराष्ट उज्जयिनी आदि स्थानो में शको की भिन्न भिन्न शाखाए स्थापित हुई। शक नरेशो के भारतीय प्रदेशो के शासन कहे जाते थे

पश्चिमी भारत के शक शासक

पश्चिमी भारत मे दो शक वंशो के अस्तित्व के प्रमाण मिलते है।

1. महाराष्ट का क्षहराव्र वंश मालवा का चष्टन वंश
2. उज्जैन के कामर्दक वंश

इसी चष्टन वंश में रूद्रदामन शको की शाखाओ में सबसे महान शक्ति शाली शासक हुआ।

1. **कार्दमकया चष्टन वंश** – क्षहरात्रो के पश्चात सुराष्ट तथा मालवा में शको के एक दूसरे कुल ने शासन किया जिसे चष्टन वंश के नाम से जाना जाता है इस नवीन वंश की स्थापना का श्रेय चष्टन को दिया जाता है। अर्न्धाअभिलेचा से ज्ञात होता है कि यह याशेमतिक का पुत्र था। चष्टन सम्भवत कुषाणो की

अधीनता मे पहले सिन्धु क्षेत्र का क्षत्रप था जिसने बाद मे अपने को स्वतन्त्र कर महा दात्रप की उपाधि धारण कर लिया।

वालमी के कथनानुसार चष्टन का उज्जेन पर अधिकार था इसकी कुछ मुदाओ पर चैत्य चिन्ह मिलता है जिसके आधार पर विद्धानो ने निष्कर्ष निकाला है कि उसने सातवाहनो के कुछ प्रदेश जीते थे। अन्धौअभिलेख से ज्ञात होता है कि वह कच्छ तथा समीपवर्ती कुछ अन्य भूखण्डो का शासक था उसकी कुछ मुदाओ जूनागण तथा गुजरात से प्राप्त हुई है। अतः ये प्रदेश उसके अधिन थे। अजमेर भी उसके राज्य मे शामिल था।

2. **जयदामन** – अधोलेख से ज्ञात होता है कि जयदामन अपने पिता चष्टन के काल मे ही मर गया था जिससे वह कभी भी महा क्षत्रप की उपाधि नही धारण कर सका। चष्टन के साथ तो राजा की उपाधि मिलती है लेकिन जयदामन के साथ राजा की उपाधि न मिलकर मात्र क्षत्रप व स्वामी की उपाधि मिलती है।
3. **रूद्रदामन प्रथम** – अधौ अभिलेख से ज्ञात होता है कि चष्टन की मृत्यु के बाद रूद्रदायन पश्चिमी भारम के शको का राजा हुआ पुनः इसी अभिलेख से यह भी ज्ञात होता है कि रूद्रदामन ने चष्टन के साथ मिलकर राज्य किया था। ऐसा शायद इसलिये कि जयदामन को चष्टन ने क्षत्रय नियुक्त किया था लेकिन उसकी मृत्यु हो जाने के बाद उसके पुत्र जयदामन के पुत्र रूद्रदामन को क्षत्रय नियुक्त करना पड़ा हो।

रूद्रदामन अभी तक भारत मे राज्य करने वाले शको मे सर्वाधिक शक्ति शाली था। जनागढ से उसका एक अभिलेख प्राप्त हुआ है जो एक प्रशस्ति के रूप मे है जिससे इसकी विजयो व्यक्तित्व एवं कृतित्व का वर्णन मिलता है। इसकी तिथि शक संवत 12 अर्थात 180 है।

जूनागड अभिलेख से ज्ञात होता है कि सभी जातियो के लोगो ने रूद्रदामन का अपना रक्षक चुना था। तथा उसने महाक्षतय की उपाधि स्वंय ग्रहण की थी।

"सर्ववर्गेरभिगम्य रक्षार्य पतित्वे वृत्तेन।
स्वयं मधिगत महाक्षत्रप नामना।।"

रूद्रदामन एक महान विजेता था जूना गढ अभिलेख में उसे नि0 स्थानो का विजेता कहा गया है।

आकर अवन्ति अनूप उपरान्त सुराष्ट आनर्त स्वयं सिन्धू सौबीर कुकुर निषाद।

इन प्रदेशो में सुराष्ट कुकुर उपरान्त अनुप आदि गौतमीपुत्र ज्ञातकर्णी के अधीन थे अतः स्पष्ट है कि रूद्रदामन ने उन्हे ज्ञातकर्णो के अधीन थो अतः स्पष्ट है कि रूद्रदामन ने उन्हे गौतमी पुत्र. के किसी उत्तराधिकारी जीता था। पुनः इसी अभिलेख

से ज्ञात होता है कि उसने दक्षिण पथ के स्वामी ज्ञात कर्णी को दो बार पराजित किया था किन्तु सम्बन्ध की निकटता के कारण उसका बध नही किया।

डा0 भण्डारकर का मत है कि यह दक्षिण पथ का ज्ञातकर्णी गौतमी पुत्र शातकर्णी था जिसे स्वीकार नही किया जा सकता है रौशन के अनुसार वह पराजित ज्ञात कीर्णी वसिष्ठी पुत्र पुलुमावी था और उपयुक्त प्रदेश रूद्रदामन ने पुलुमावी से ही जीता था रैपशन के अनुसार कन्हेरी अभिलेखानुसार वाशिष्टी पुत्र पुलुमावी रूद्रदामन के साथ अपनी पुत्री का विवाह किया था यही दोना मे निकट का सम्बन्ध था।

अन्य उपलब्धियाँ

सुदर्शन झील का पुननिर्माण – जूनागढ लेख के अनुसार रूद्रदामन ने जनता पर धिना अतिरिक्त कर लगाये ही अपने व्यक्तिगत कोष से धन देकर अपने राज्यपाल सुविशाघ की निर्देशन मे बौध की फिर से मरम्मत करवायी थी। तथा उससे तिगुना मजबूत बनवा दिया

सद्रदामन एक उदार शासक था। उसने प्रजा से नता अतिरिक्त कर लिया और न ही बेगार प्रजा से न तो अतिरिक्त कर लिया ओर न ही बेगार लिया। उसका कोष स्वर्ण रजत हीरे आदि बहूमुल्य धातुओ से भरा रहता था।

कनक, रजत, बज, बैदूर्य, रतनोपच विष्यदमान कोषेन–

रूद्रदामन अपने साम्राज्य को प्रदेशेा मे विभक्त किया और प्रत्येक प्रदेश मे अपना अमात्य नियुक्त किया सुराष्ट प्रान्त का शासक सुविशाघ था। उसकी एक मन्त्रिपरिषद थी जिसमें दो प्रकार के मन्त्री होते थे।

1. मति सचिव सलाहकार 2. कर्म सचिव कार्यकारी मबी

रूद्रदामन महान विजेता तथा कुशल प्रशासक के साथ साथ एक उच्च कोटि का विद्वान तथ बिछा प्रेमी था वह व्याकरण सस्कृति राजनीति संगीत गर्न्ध न्याय आदि विधाओ मे पवीण था। उसे जू0अ मे गघ पघ काव्यो मे प्रवीण बताया गया है।

वह वैदिक धर्मानुयायी तथा संस्कुति भाषा को राजाश्रय प्रदान किया था। विशुद्ध संस्कृति भाषा मे लिखा उसका जनागढ अभिलेख प्राचीनकाल अभिलेखो में से एक है।

इस प्रकार रूद्रदामन एक महान विजेता साम्राज्य निर्माता उदार एवं लोकोपकारी प्रशासक तथा हिन्दू धर्म एवं संस्कृति का महान उन्नायक था। उसका शासन काल सामान्यता 130 से 150 तक स्वीकार किया जाता है।

यौधेय विजय– जूनागढ लेख से ज्ञात होता है कि उसने यौघेयो को पराजित किया था जिन्हे सम्पूर्ण यात्रियो ने अपना बीर मान लिया था। इसलिये यौघेय अपने को अजेय

मानकर उघृत स्वभाव वाले हो गये थे इनको पराजित का रूद्रदामन ने इनके अभिमान को चूर कर दिया।

सातवाहनों की उत्पत्ति व मूल स्थान तथा गौमती पुत्र शातकर्णी तक सातवाहन राज्य के विकास का चित्रण कीजिए।

उत्पत्ति :–

ईशापूर्व प्रथम शताब्द में विन्ध्य पर्वत के दक्षिण में दो प्रबल शक्तियों की उत्पत्ति हुई– जिनमें चेदियो की शक्ति वो अल्पकालीन थी नेकिल शातवाहन शक्ति का तीन शताब्दी तक निरन्तर उत्कर्ष होता रहा तथा उनकी सत्ता कि सनि किसी रूप में चार शाताब्दी तक बनी रही। सातवाहन सम्राटों ने न केवल विदेशियों के विरूद्ध अपनी स्वाधीनता की रक्षा की अपितु साहित्य, कला, व्यापार आदि को प्रोत्साहन प्रदान कर अपनी प्रजा की भौतिक एवं सांसकृतिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया।

सातवाहनों की उत्पत्ति तथा मूल स्थान के विषय में विद्वानों मे गहरा मतभेद है। पुराणों में इस वंश के संस्थापक सिमक को आन्ध्र–भूत्य तथा आन्ध्र जातीय कहा गया है। जब कि अभिलेखों में इस वंश के राजाओं ने अपने को सातवाहन ही कहा है। ऐतरेय ब्राह्मण में आन्ध्र प्रदेश के निवासियों को (अनार्य) कहा गया है। इसके अनुसार विश्वामित्र के पुत्रों ने कृष्ण तथा गोदाबरी के मध्य स्थित प्रदेश में (जिसे आन्ध्र प्रदेश कहा गया है) जाकर आर्येत्तर जातियों से विवाह किया था। इस सम्बन्ध के फलस्वरूप आर्य उत्पन्न हुए।

इस आधार पर कुछ विद्वानों ने सातताहनों को अनार्य कहा है।

लेकिन मात्र पुराणों के आधार पर ही सातवाहनों को अनार्य नहीं माना जा सकता। पुराणों के अतिरिक्त अभिलेखों तथा अन्यत्र जहां कही भी सातवाहनों का उल्लेख मिलता है उन्हें उच्च वर्ण का ही कहा गया है।

हेमचन्द्र राय चौधरी के अनुसार" सातवाहन ब्राह्मण थे जिनमें नागों के सक्त का कुछ मिश्रण था।" इनका मत सत्य प्रतीत होता है। क्योंकि गौतमीपुत्र शातकर्णी को नासिक अभिलेख में 'एक ब्राह्मण' अर्थात अद्विवीय ब्राह्मण कहा गया है। जिसने दास्त्रियों के दर्प को चूर्ण कर दिया था।

"जतिपदर्प मानमदनस"– आम माना निलयस ऐसा लगता है कि शकों द्वारा परास्तहोने के बाद सातवाहन लोग अपना मूल स्थान छोड़कर आनध्र प्रदेश में जाकर बस गये। इसी कारण पुराणें में उन्हें आन्ध्र कहा गया है।

अतः आन्ध्र जातिय विरूद को प्रादेशिक संज्ञा मानना उचित प्रतीत होता है। मूलतः सातवाहन ब्राह्मण ही थे।

मूल स्थान :– उत्पत्ति के समान इनके मूल स्थान के विषय में भी पर्याप्त मतभेद है। रैप्सन, स्मिथ, भण्डारकर आदि विद्वान आन्ध्र प्रदेश में ही उनका मूल स्थान मानते है। स्मिथ ने श्री काकुलम और भण्डारकर ने धान्य कटक को माना है।

इनके मतों के विरूद्ध सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि उपयुर्क्त स्थान में कही से भी सातवाहनों को कोई अभिनेख अथवा सिक्का नहीं प्रापत हुआ है।

1. अभिलेख तथा सिक्कों की प्राप्ति के आधर पर सातवाहनों का मूल स्थान महाराष्ट्र के पतिष्ठान या पैठन को स्वीकार किया जा सकता है। क्योंकि यही से नागनिका का नानाघट अभिलेख तथा नासिक से दो लेख मिले हैं।
2. दूसरे सातवाहनों का महारठी वंश के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था
3. सिक्के भी सातवाहनों के महाराष्ट्र से काफी मात्रा में पाये गये है।
   इस प्रकार अभिलेखिय तथा मुद्रा सम्बन्धी प्रमाणों के आधार पर प्रतिष्ठान को ही इनका मूल स्थान स्वीकार किया जा सकता है।

   चौथे– महाराष्ट्र के पूना जिले में आन्ध्र नदी थी जहां आन्ध्र जातियां आज भी निवास करती है। इस आधार पर जोग लेकर ने पूना की आन्ध्र घाटी को इनका मूल स्थान माना है।

   सिमुक अथवा सिन्धुक

पुराणों के अनुसार सातवाहन साम्राज्य का संस्थापक सिमुक था। वायु पुराण के अनुसार–"आन्ध्र जातिय सिमुक कण्व वंश के अन्तिम राजा शुशर्मा की हत्या कर तथा रांगो की बची हुई शक्ति को समाप्त कर पृथ्वी पर शासन करंगा।" इसका शासन काल 60 ठण्ब् से 35 B.C. तक माना जाता है। इसकी किसी अन्या उपलब्धि के विषय में निश्चित पूर्वक कुछ ज्ञात नहीं है।

सिमुक के बाद उसका छोटा भाई कन्ह या कृष्ण राजा हुआ।

शातकर्णी :–

इसके बाद श्री शतकर्णी जो सिमुक का पुत्र था राजा हुआ। जो अब तक का सबसे शक्तिशाली राजा हुआ था। इसने ही सर्वप्रथम अपने वंश में 'शातकर्णी' की उपाधि धारण की।

इसने अंगयिकुल के महारठियों की पुत्री नागालिका से विवाह करके अपनी राजनैतिक स्थित को मजबूत कियां। नागनिका के नाना घाट अभिलेख से ज्ञात होता है कि– इसने पश्चिमी मालवा, अनुप तथा विदर्भ के प्रदेशों की विजय की थी।

शातकर्णी को कलिंग राजा खारवेल के आक्रमण का भी सामना करना पड़ा था। हाथी गुफा अभिलेख के अनुसार–"अपने राज्या रोहण के दूसरे वर्ष खारवेल ने शतकर्णी की परवाह न करत हुए पश्चिम की ओर अपनी सेना भेजी।" यहा स्थान शतकर्णी ने खारवेल के आक्रमण का प्रबल विरोध किया। जिससे खारवेल को बिना सफलता के

वापस लौटना पढ़ा। क्योंकि खारवेल यदि विजयी हुआ होता तो इसका उल्लेख वह अपने अभिलेख में अवष्य करता।

अभिलेख से ज्ञात होता है कि शातकर्णी ने दो अश्वमेघ तथा एक राज सूर्य यश किया था। उसने अश्वमेघ यश के बाद अपनी पत्नी के नाम पर रजत मुद्राये उत्कीर्ण करवायी। जिनमें उसने दक्षिण पथ पति तथा अप्रति हत चक्र जैसी महान उपाधिया धारण की। इस प्रकार शातकर्णी प्रथम शासक था जिसने सातवाहनों को सार्वभौम स्थिति में ला दिया।

नोट– पुराणों में सातवाहल वंश के संस्थापक सिमुक को आन्ध्र भूत्य एवं आन्ध्र जातिय रूप में सिंधुक, शिशुक, शिप्रक, वृपल आदि अनेक नामों एवं उपाधियों से उल्लिखित किया गया है।

आन्ध्र भूत्य पद की व्याख्या करते हुए कतिपय इतिहासकारों ने लिखा है कि– सिमुक मौर्यो अथवा शुंगो का भूत्य था लेकिन उस मत के पीछे कोई ठोस आधार नहीं है। वास्तविकता यह है कि आन्ध्र कण्वो के भूत्य थे न कि मौर्यो व शुंगों के।

इस शासक के विषय में (सिमुक) पुराणों तथा नानाघाट प्रतिमा लेब से सूचनाये मिलती है। अभी हाल ही में अजय शास्त्री को सात सिक्के सिमुक के नाम के मिले है नानाघाट लेख में उसे राजा सिमुक सातवाहन कहा गया हैं। जैन गाथाओं के अनुसार उसने जैन तथा बौद्ध मन्दिरों का निर्माण करवाया था अपने शासनकाल में वह दूराचारी हो गया था तथा मार डाला गया।

"गौतमी पुत्र शातकर्णी"

भूमिकाः– शक आक्रमण के फलस्वरूप क्षतिग्रस्त सातवाहन कुल एवं साम्राज्य को पुनः प्रतिष्ठित करने को श्रेय सातवाहन कुलपशपति था कर गौतमी पुत्र शातकर्णी को ही दिया जा सकता है। अपने अप्रतिम शौर्य प्रतिभा एवं रानीति के बल पर इसने एक बान पुनः सातवाहन वंश को साम्राज्यिक राजवंश का स्वर प्रदान किया। पुराणो के अनुसार–(विशेषतयः मत्स्यपूराण) "यह सातवाहल का 23वां शासक था। इसके पिता का नाम शिव स्कलि था तथा माता का नाम गौतमी था। माता गौतमी तथा सातवाहनों की पारम्परिक उपाधि शातकर्णी के आधार परइसका नाम गौतमी पुत्र शातकर्णी रखा गया था।

इस शासक के सम्बन्ध में शातकर्णी तथा गौतमी प्रत्र शातकर्णी के बीच शासन करने वाले राजाओं की संख्या 10 से 19 तक बताई गयी है। लेकिन इनमें हाल सर्वोधिक महत्वपूर्ण शासक प्रतीत होता है। हाल के विषय में हमें भारतीय साहिष्णुता से

भी सूचना मिलती है। यह शान्ति प्रिय शासक था। इसने 'गाथासप्तसती' नामक एक ग्रन्थ की प्राकृत भाष में रचना की थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि इसी समय पश्चिमी भारत पर शकों का आक्रमण हुआ। शकों ने महाराष्ट्र, मालवा, कठियावाड आदि प्रदेशों को सातवाहनो से जीत लिया। बहुत सम्भव है कि सातवाहनों ने शकों की अधीनता भी स्वीकार कर ली हौ। इस प्रकार शातकर्णी प्रथम से लेकर गौतमी पुत्र शातकर्णी के उदय के पूर्व तक का लगभग एक शताब्दी का काल सातवाहनों के ह्रास का काल है।

"उपलब्धियाँ"

शक विजयः– गौतमी पुत्र शातकर्णी की सब से महत्वपूर्ण उपलब्धि शक विजय थी। सातवाहन कुल के यश की पुनस्थपिना का श्रेय शायद उसे केवल क्षहरात्रों (शकों) के विरूद्ध सफलता के कारण ही दिया गया प्रतीत होता है।

क्षहरात्रों के आक्रमण के कारण सातवाहनों का महाराष्ट्र के ऊपर से अधिकार छिन गया था। अतः महारारूट्र तथा उत्तर के अन्य प्रदेशों पर अपना अधिपत्य पुनः कायम करना गौतमी पुत्र का प्रथम उद्देश्य था। क्षहरात्रों के विरूद्ध उसके सैनिक अभियान का उल्लेख उसके अपने लेख 'नासिक गुहालेख' साशिष्टी पुत्र पुलुमावी की नााशिक प्रशस्ति तथा जोगलयम्बी मुद्राभाण्ड में मिलता है।

नासिक गुहालेख के अनुसार– "वेणकटक स्वामी गौतमी पुत्र श्री शतकर्णी ने वैजपति सैनिको के शिविर (गोवर्द्धन) से ऋषभदत्त द्वारा पूर्व निर्गट भूमि के तिररश्मि पर्वत स्थिति बौद्ध भिक्षुओं के पक्ष में दान दिये जाने के लिये अमात्य को आदेशित किया था।

इससे प्रतीत होता है कि यह भू–भाग किसी समय ऋषभदत्त (नहयान का दामाद) के अधिकार में था। जो गौतमी पुत्र ने कभी छीन लिया था।

2. <u>कार्ले लेख</u> में भी गौतमी पुत्र द्वारा दान दिये जाने का अर्थ है कि उसने उक्त भू–भाग को नहयान के दामाद ऋषभदत्त से छीना था।

वशिष्ठी पुत्र पुलुमावी के नासिक प्रशस्ति में गौतमी पुत्र को सकयवन, पल्हव, निसूदन (शक, यवन पल्लवों का विलाश के) तथा खख्रात– वस–निरवद्व सेलक(क्षहराव) का उन्मूलन कर्ता तथा सातवाहन कुल यशपति थापनकर (शातवाहन वंश की पुनस्थापना करने वाला) कहा गया है।

गौतमी पुत्र शातकर्णी की शक विजय का समर्थल जोगलथम्बी मुद्रा भाण्ड से भी हो जाता है। इसमें लगभग 13200 मुद्रायें है। जिनमें दो तिहाई से भी अधिक नहयान की मुद्रायें गौतमी पुत्र द्वारा पुनरंकित करवायी गयी है।

अन्तसः क्षहरात्र वंश का विनाश हुआ। पश्चिमी दकन में निवास करने वाली शक, यवन, पल्हव जाति या तो मौत के घाट उतार दी गयी।

"खखरात, वास, निरव, सेस, कसन, शक पल्हव, यवन, निसूदन अनेक समर वजित सतु सहास"

आवश्यक सूत्र की टीभ के अनुसार भी सातवाहन नरेश ने नहयान की राजधानी भूरूकन्तह पर आक्रमण कर उसके कोषागार पर अधिकार कर लिया था।

शकों के नेता नहयान तथा उषावदात पराजित हुआ तथा मृत्यु के बाद उतार दिये गये। गौतमी पुत्र तथा नहयान का युद्ध नासिक के आस–पास लड़ गया प्रतीत होता है। अपनी विजय के बाद उसने नासिक के बौद्ध संघ का अजकालकीय नामक क्षेत्र दान में दिया था और इसी समय उसने एक राजारा जारी किया जिसमें अपनें को वेणाकटक का स्वामी कहा है।

अधिकांश विद्वानों की मान्यता है कि गौतमी पुत्र शातकर्णी का शक प्रतिद्वन्दी नहयान था, किन्तु स्मिथ, भण्डारकर आदि कुछ पुराद्वि उसे स्वीकार नहीं करते। दूसरी ओर D.C. सरकार, राय चौधरी, रैण्सन, सूधाकरी, चट्टोपाध्याय आदि गौतमी पुत्र शातकर्णी तथा नहयान को समकाली मानते है।

अन्य विजयेंः– नाशिक प्रशसित में खख्रात, बस निवसेसकर के अतिरिक्त गौतमी पुत्रा शातकर्णी के लिये शक, यवन, पल्लव, निसदन, खयि दर्प मान मदस अनेक समरावजित, सत्रसंघ (अनेक समरों में शत्रु संघ का जीतने वाला)

'अपराजित विजय पताका इत्यादि का प्रयोग किया गया है।

इससे प्रतीत हाता है कि गौतम पुत्र ने शकों के अलावा यवनों तथा पल्हवों के विरूद्ध भी युद्ध किया था और उनको पराजित किया था।

कुश्रछ विद्वानों ने अपना मत व्यक्त किया है कि गौतमीपुत्र तथा लहयान युद्ध में नहयान की सहायता सीथ्यिनों, पार्थियानों तथा यवनों ने की थी। जिनके सकम्लत मोर्चे को गोतमी पुत्र ने पराजित किया था।

गौतमी पुत्र शातकर्णी के पुत्र वाशिष्ठी पुत्र के शासन काल के 19वें वषों में उत्कीर्ण नासिक प्रशस्ति में गौतमी पुत्र द्वारा विजित निम्न प्रदेशों के नाम मिलते है। जिससे उसके साम्राज्य विस्तार के बारे में सूचना मिलती है।

ऋषिक – (कृष्णा नदी का तटीय प्रदेश)
अण्मक – (गोदावरी का तटी प्रदेश)
मूलक – (पैठन का समीपवर्ती भाग)
सुराष्ट्र – (दक्षिणी काठियावाड़)
कुकुर –(पश्चिमी राजपुताना)

अपरानत – (उत्तरी कोंकण)
अनूप – (नर्मदा घाटी)
विदर्भ – (बरार)
आकर – (पूर्वी मालवा)
अवन्ति – (पश्चिमी मालवा)

विद्वानों की धारणा है कि इनमें अपरान्त, अनूप, सूराष्ट्र, कुकुर, आकर तथा अवन्ति के प्रदेशों को उसने निश्चित रूप से नहयान से जीता था।

पुनः नासिक प्रशस्ति से पता चलता है कि गौतमी पुत्र का बिन्ध्य पर्वत के दक्षिण के सम्पूर्ण प्रदेश पर अधिकार था। बिन्ध्य, ऋक्षवत, परिवात,(पश्चिमी बिन्ध्य तथा अरावली) सहय (नील गिरी) मत्रय (त्रावणकोर) महेन्द्र (पूवी घाट) आदि पर्वतों का स्वामी कहा गया है। इसी प्रशस्ति में यह भी बताया गया है कि "उसके वाहनों ने तीनों समुद्रों का जल पीया था।"(तियमुद्र–तोय–पीतवाहन) यहां तीनों समुद्रों से तात्पर्य– बंगाल की खाड़ी, अरब सागर तथा हिन्द महा सागर से है। यद्यपि यह विवरण अतिरंजित है तथापि इससे उसके विजयी होने की अवश्य सूचना मिलती है। जिसके समय में सातवाहन साम्राज्य अपने उत्कर्ष की पराकाण्ठा पर था।

नासिक प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि वह क्षत्रियों के दर्प को दूर्प करने वाला एक छत्रशासक था। जिसने राप, महाराज स्वामी आदि की महान उपाधियाँ धारण की थी। इसी प्रशस्ति में उसी प्रशंसा बड़े रोमांचक ढंग से की गयी है।

"जिसने अनेक युद्धों को जीता था जिसकी विजय पताका अपराजित थी जिसकी राजधानी शत्रुओं द्वारा अनाक्रमणीय थी। जो शक्ति में राम, केशव, अर्जुन तथा भीम सेन के समान था। जो बहुत जनमे जय संगर अर्थात राम अम्बरीष के समान तेजश्वी था।

नासिक प्रशस्मि में अन्यत्र कहा गया है कि "गौतमी पुत्र एक सगशर तथा विजेता ही नही बल्कि रविरश्मियों से जिले विमल कमल सदृश्य मुख वाला (दिवसकरकर विवोदित कमल विमल सदिसवेंयं) तथा परिपूर्ण चन्द्रमण्डल श्री पूर्ण प्रियदर्शन था। उसका विक्रम अत्यन्त महान तथा श्रेष्ठ था तथा सुदीर्घ भुजायें शेषनाग के समान गोल थी। सभी राजा उसके चरण की वन्दना करते थे।"

गौतमी पुत्र समरशर प्रियदर्शन एवं तेजष्वी के साथ–साथ विद्वान एवं प्रतिभा सम्पन्न भी था। नासिक प्रशस्ति में उसे समस्त बहुमुखी आगमों (वेदो) का ज्ञाता कहा गया है। उसके आश्रम में बहुत से सरपुरूष रहते थे। वह स्वंय ब्राह्मण ही नही था बल्कि द्विज एवं अद्विजों के कुल का वर्द्धान करने वाला था।
"(दिजावर कुटुब विवधन)"

व्यक्तिगत रूप से वह ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था। लेकिन वह कट्टर ब्राह्मण नहीं था। वह धर्म सहिष्णु था तथा बौद्धो को उसने ग्राम तथा भूमि दान दिया था। उसकी पुष्टि उसके नासिक मुहालेख से होती है।

यद्यपि वह पूर्ण निरंकुश शासक था वथापि वह अशोक की वरह प्रजावात्सल था तथा अपनी जनता से पुत्रवत व्यवहार करता था। वह प्रजा के सुख को अपना सुख तथा दू:ख को अपना दू:ख मानता था।

"पोरजननि विसे ससम दु:ख दुखस"

उसने कभी भी जनता वर धर्म विरूद्ध कर नहीं लगाया।

"धर्मोपार्जित कर विलियोग करस"

उसने अपने सम्पूर्ण साम्रज्य को 'आहारो' में विभक्त किया था। प्रत्येक आहार एक अमात्य के अधीन था। अपने राज्यकाल के अन्त में उसने अपनी माता के साथ मिलकर शासन किया था। गौतमी पुत्र की शासन तिथि काफी विवादस्पद है सामान्यत: मोटे तौर पर उसका शासन काल 106 से 1180 A.D. तक मान सकते है।

———————————————————————

"शक सातवाहन संघर्ष"

भूमिका :– शकों तथा ातवाहनों का प्रारम्भिक इतिहास, उत्पत्ति, स्थान आदि।

संघर्ष :– सातवाहन नरेश शातकर्णी प्रथम (लगभग 27 B.C. से 17 B.C.) के पश्चात सातवाहनों का इतिहास अन्धकार पूर्ण हो गया। 17 B.C. से 106 A.D. तक अर्थात गौतमी पुत्र शातकर्णी के उदय तक का समय सातवाहनों के ह्रास व पतन का काल माना जाता है। इस अवधि में अनेकों नेक अयोग्य तथा निर्बल राजा हुए। जो सातवाहन साम्राज्य की सीमाओं को सुरक्षित न रख सके। इस स्थिति का लाभ उठाकर ?पश्चिम भारत के शको ने अनेकानेक आक्रमण किये तथा सातवाहनों को पराजित होना पड़ा। सातवाहन साम्राज्य के पश्चिमी तथा उत्तरी प्रदेशों पर शकों का अधिकार हो गया। यही से शक सातवाहन संघर्ष का आरम्भ होता है। जो काफी समय वक चलता है।

पख्चिम भारत में शासन करने वाले प्रथम शक नरेश का नाम 'मेम्वरस– Membarus" था। जिसकी राजधानी भिन्ननगर थी। पेरीप्लस से ज्ञात होता है कि मेम्बरस का राज्य कठियावाड़, गुजरात तथा राजस्थान के कुछ भागों तक विस्तृत था। पेरीप्लस से ही ज्ञात होता है कि– इस समय सातवाहनों का बंदरगाह मेम्बरस के आक्रमण के करण असुरक्षित हो गया था। दुर्भाग्य वश हमें मेम्बरस के समय शक सातवाहन संघर्ष का स्पष्ट एवं विस्तृत विवरण नहीं मिलता है।

प्रथम चरण :– 1. मेम्बरस के बाद पश्चिम भारत में शकों की एक दूसरी शाखा का राज्य स्थापित हुआ जिसे क्षहरात्र वंश के नाम से जाना जाता है। शक सातवाहन संघर्ष का वास्तविक इतिहास यही से शुरू होता है क्षहरात्र वंश का प्रथम शासक भूमिक था। उसके सिक्के गुजरात, कठियावाड़ के तटीय प्रदेश, मालवा तथा रापूताना के अजमेर से प्राप्त हुए है। निःसंदेह मालवा को उसने सातवाहनों से जीता होगा। क्योंकि मालता शतकर्णी के समय उसके राज्य में सम्मिलत था।

2. नहयान इस वंश का दूसरा शासक था। इसके सिक्के उत्तर में अजमेर से लेकर दक्षिण में महाराष्ट्र तक के प्रदेश में मिले है तथा अभिलेख– जूननार (पूना) "नासिक तथा कार्ले से प्राप्त हुए है। इन दोनों के सम्मिलित साक्ष्य से ज्ञात होता है कि नहयान के नेतृत्व में शकों ने सातवाहनों को मालवा, अवराना तथा महाराष्ट्र से बारह खदेड़ दिया था और इन प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। ऐसा लगता है कि शकों को यह सफलता शातकर्णी के उत्तराधिकारियो के काल में ही प्राप्त हुई होगी। सम्भवतः इस समय शको की अधीनता भी स्वीाकार कर लिया हो।

दूसरा चरण – शीघ्र सातवाहनों को गोतमीपुत्र शातकर्णी जैसा योग्य और शक्ति शाली राजा मिल गया जिसने शको को पराजित कर न मात्र सातवाहन साम्राज्य को पूर्व स्थिति में ला दिया बल्कि अनेक भू–भागों को भी विजित किया।

नासिक प्रशरित से पता चलता है कि अपने शासन के 18 वे वर्ष गौतमी पूत्र शातकर्णी व्यापक तैयारी के साथ क्षहरात्रो के राज्य पर आक्रमण कर दिया। तथा युद्ध में नहयान व उसका दामाद ऋषभदत्त मार डाले गये तथा गौतमी पुत्र ने अपरान्त अनूप सुराठव कुकुर आकर, अवन्ति के प्रदेशों पर अधिकार कर दिया।

नासिक प्रशस्ति में ही मेतिमी पुत्र शातकीये को क्षहरात्रो का विनाश करने वाला, सातवा वंश की प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने वाला, तथा शक भवन व पल्हवों का उन्मूलन करने वाला कहा गया है।

नासिक जिले के जोमलथम्बी नामक स्थान से प्राप्त सिक्को के देर से भी इस विजय की सूचना मिलती है। यहां नहयान के अनेक ऐसे चादी के सिक्के मिलते है जेा गोमति पुत्र द्धारा पुनरंकित कराये गये है। इससे प्रतीत हेाता है है कि जोगलथम्बी में नहयान का राजकीय कोषागार था जिसे गोतमी पुत्र ने पराजित कर लिया है।

तीसरा चरण – इस चरण में सातवाहनो का संघर्ष शको की दूसरी शाखा अर्दमक शासक से हुआ कार्दभक शाखा का संस्थापक यशेमतिक का पुत्र चष्टन था। और सातवा पुन राजा गौतमी पुत्र व उत्तराधिकारी वाशिष्ठी पुत्र पुलुमावी था। तामसी के विवरण से ज्ञात होता है कि–
चठटन की राजधानी उज्जयिनी को जीत लिया होगा। क्योकि उज्जयिनी गौतमी पुत्र के समय में उसके साम्राज्य में सम्मिलित थी। जिससे निष्कर्ष निकलता है कि चष्ठन ने सातवाहनों के उत्तरी प्रदेश को जहां चैत्य प्रकार के सिक्के प्रचलित थे जीत लिया था।

सातवाहनें के विरूद्ध कार्दमक शाको को चष्टन के पौत्र रूद्रदामन 130 के समय में सबसे अधिक सफलता मिली।

जूनागढ अभिलेख से पता चलता है कि इसने आकर अवन्ती अनूप सुडाठत उपरान्त कुकुर के प्रदेशें पर इसका अधिकार था। गौतमी पुत्र की नासिक प्रशास्ति से भी ज्ञात होता है कि इन प्रदेशे पर रूद्रदामन का ही अधिकार था भता स्पष्ट है कि रूद्रदामन ने इन प्रदेशे को पुलुमादी से जीता होगा।

जूनागढ से यह भी ज्ञात होता है कि रूद्रदामन ने दक्षिण पक्ष के स्वामी शातकर्णी को दो बार परास्त किया था किन्तु सम्बन्ध की निकटता के कारण पुलमावी था। कन्हेरी लेख से ज्ञात हेाता है कि गौतमी पूत्र शातकर्णी के समय मे उसके पुत्र का पुलुमावी का विवाह रूद्रदामन की कन्या से हुआ था।

पुलुमावी के बाद शिवश्री शाातकर्णी तथा फिर शिवस्कन्द शातकर्णी राजा हुए। लेकिन यह ज्ञात नही है कि इन्होने ने अपने बोरो हुए प्रदेशो को जीतने का प्रयास किया या नही।

अन्तिम चरण – शक सातवाहन संघर्ष का अन्तिम चरण सातवाहन नरेश यशश्री शातकर्णी (174–203 ई0) के समय प्रारम्भ हुआ। ऐसा लगता है कि यशश्री ने अपने खोये हुए राज्य को प्राप्त ऐसा लगता है कि यशश्री ने अपने खोये हुए राज्य को प्राप्त करने लिये शकों के विरूद्ध अभियान छेड दिया हो।

अपरान्त से उसके शासन काल में 16 वे वर्ष का एक अभिलेख मिला है जिससे ज्ञात हेाता है कि उसने उपरान्त को जीत लिया था। दूसरे सोपारा से प्राप्त उसके कुछ सिक्के रूद्रदामन के चांदी के सिक्के के अनुकरण पर दलवाये गये थे। इसके सिक्को का निस्तार गुजरात काठियाबाद मालवा तथा अल्प प्रदेश तक है। इस प्रकार ऐसा प्रतित होता है कि

उसने शंको को परास्त कर उपरान्त अनूप तथा पश्चिमी भारत को कुछ भाग पुनः जीत लिया था। इसके साथ ही शक सातवाहन संघर्ष का अन्त हुआ।

ऐसा प्रतीत हेाता है कि उसके बाद दोनो वंश अपनी आन्तरीक समस्याओं मे उलझा गये फलस्वरूप उनकी पारम्पिरिक शत्रुता का स्वाभाविक रूप से अन्त हो गया। दूसरे शताब्दी के लम्बे संधष के कारण उनकी शान्ति भी क्षीण हो चुकी थी।

———————————————————————